जिन्दगी
की
मुस्कान

* प्रवचनकार :
मन्त्री श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

* सम्पादक
'देवेन्द्र' मुनि साहित्य-रत्न
मुनि नेमीचन्द्रजी

* मूल्याङ्कन :
सन्माननीय न्यायमूर्ति
श्री इन्द्रनाथजी मोदी

* प्रकाशक
सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल
जोधपुर — जयपुर

* मुद्रक
नवयुग प्रेस, जोधपुर

* सस्करण
प्रथम १०००

* समय :
महावीर जयन्ती
९ अप्रेल १९६०

* मूल्य :
एक रुपया चालीस नये पैसे

नित्य कर्म जो करते हम हैं,
उनके सत्य झूठ का भान।
निर्णय करने हित अर्पित है,
मधुर जिन्दगी की मुस्कान॥

जिन्दगी की मुस्कान : एक मूल्यांकन

जिन्दगी की मुस्कान जीवन के सम्बन्ध में एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण सन्देश लेकर भारत के एक प्रबुद्ध कलाकार सन्त के हृदय से विभिन्न प्रसंगों पर प्रस्फुटित हुई है जिसका व्यक्तित्व उज्जस्वल है हृदय विराट है और चिन्तन सूक्ष्म-आभा से ओत-प्रोत है। जिन्होंने प्रत्यक्ष-प्रवचनामृत का पान किया है, वे जानते हैं कि चुम्बक की तरह उनके प्रवचनों का माधुर्य जन-मन-नयन को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते हैं और जिन्हें साक्षात् प्रवचन श्रवण का सौभाग्य सम्प्राप्त नहीं हुआ है उनके कर-कमलों में यह प्रेरणा-प्रद प्रवचनों का संकलन है ही, जिन्हें पढ़ते ही आपको प्रवचनकार श्रद्धेय मन्त्री पण्डित-प्रवर श्री पुष्कर मुनिजी म० की बहुश्रुतता, अगाध पाण्डित्य और ओज-भरी वक्तृता के दर्शन होंगे। साथ ही भाषा की सजीवता, भावों की गम्भीरता और शैली की प्राञ्जलता से आप प्रभावित होंगे और आपके हृत्तन्त्री के सुकुमार तार झनझना उठेंगे कि इन प्रवचनों में भारतीय संस्कृति की साक्षात् आत्मा बोल रही है। ये प्रवचन वस्तुतः नई दिशा, नई स्फूर्ति और नई प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं। इनकी तेजस्वितापूर्ण-प्रभा प्राणी मात्र के लिए प्रकाश स्तम्भ हैं, राष्ट्र-भारती का भव्य भूषण है।

आज का जन-जीवन समस्याओं में आक्रान्त है परिवार, समाज और राष्ट्र सभी समस्याओं में उलझे हुए हैं, सर्वत्र विग्रह विद्रोह और कलह की आग जल रही है, विघटनवाद के नगाडे वज रहे हैं। दिमागो मे तूफान उठ रहे है, दिलो की धडकने वढ रही है, राष्ट्र परेशान है, समाज हैरान है, व्यक्ति व्यथित है, कही अमीरी और गरीवी की समस्या है और कही शोपक और शोपितो की समस्या है, उस पर भी विश्व क्षितिज पर अणु-अस्त्रो की विभीपिकाएँ उमड-घुमड कर मण्डरा रही है, वे कव वरस पडेगी इसका कुछ भी अता-पता नही है, आज ससार मौत के कगरे पर खडा है इसका प्रमुख कारण है मानव का भौतिक विकास तो अत्यधिक हो चुका है किन्तु आध्यात्मिक और नैतिक विकास के अभाव मे उसकी स्थिति पक्षाघात की विमारी सी हो रही है, मानवता मर रही है, दानवता पुष्ट हो रही है, जिन्दगी की असली मुस्कान समाप्त हो रही है, ऐसे विपम समय मे एक क्रातदर्शी सन्त की यह जादू-भरी वाणी का सहज मधुर और सुन्दर प्रवाह, जो न कही रुकता है, न स्खलित होता है अपितु जीवन के अन्तस्तल को स्पर्श करता हुआ जीवन का सर्वांगीण विश्लेपण करता हुआ, अन्तर्मन को झकृत करता हुआ, भूले-भटके जीवन-राहियो को सही दिशा-दर्शन करता हुआ, प्रतिपाद्य विपय की ओर मधुर मुस्कान के साथ वह रहा है जो वादो की मरु मरीचिका से हताश मानव को शान्ति के दर्शन करायेगा।

दूसरे शब्दो मे इस जीवन का वोलता हुआ नया भाष्य या महाभाष्य कह सकते है, जो नये युग के मानव को—उद्दाम लालसा की तृप्ति के लिए पागल वना हुआ है, प्रगति के नाम सहारकारी शस्त्रास्त्रो का निर्माण कर रहा है, भोगो की चकाचौध मे

चाधिया रहा है, स्वार्थ की सकीर्णताम्रो म घिरा हुम्रा है जीर्ण-शीर्ण परम्पराम्रो, गलत रीति-रिवाजो म्रौर रूढ धारणाम्रों के शिकजो म जकडा हुम्रा है साम्प्रदायिकता, जातीयता प्रान्तीयता म्रौर गुरुडमवाद के झमेले म पडा हुम्रा है उसे यह महा-भाष्य सत्य शिव सुदरम्' की कमनीय कला सिखलायगा। जीवनोत्थान की मगल मय पुण्य प्रेरणा प्रदान करेगा। साम्प्रदायिकता, जातीयता म्रौर प्रान्तीयता स ऊपर उठा कर विशुद्ध मानवता के दर्शन करायेगा।

श्रद्धेय मत्री मुनि श्री का जोधपुर गत वर्षावास सघ के लिए वरदान रूप स सिद्ध हुम्रा है। वर्षावास मे इन पक्तियो के लेखक को भी प्रवचनो के श्रवण का सौभाग्य मिला है। प्रवचनो के श्रवण स मुझे यह प्रत्यक्ष अनुभव हुम्रा कि मत्री मुनि श्री एक ओजस्वी प्रवक्ता है उनके विचार मौलिक म्रौर वैज्ञानिक है। जटिल से जटिल विषय को वे सरल सरस म्रौर मधुर बना कर ऐसी बोधगम्य व ममस्पर्शी शैली मे प्रस्तुत करते है जिसका जन-मानस पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पडता है। इसमे सन्देह नहीं कि प्रस्तुत पुस्तक में विवेचक श्री ने जिस निर्भिकता स जो उदात्त म्रौर गभीर विचार उपस्थित किये है वे जन, अजन सभी के लिए दिलचस्प म्रौर ग्राहक है। इसलिए मै इसकी सराहना करता हूँ म्रौर म्राशा करता हूँ कि इन बेशकीमती विचारो को पढकर अनेक लोग लाभान्वित होगे।

जीवनोन्नति के प्रशस्त पथ को म्रालोकित करने वाले इन प्रवचनो का प्रकाशन 'सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल' द्वारा हो रहा है, यह एक परम सतोष म्रौर म्रानन्द का विषय है। मै वह

सकता हूँ कि यह शानदार प्रकाशन इस बात का एक प्रबल तथा प्रत्यक्ष प्रमाण है कि यह संस्था वास्तविक रूप में एक विशिष्ट सम्प्रदायगत सीमाओं में ही परिवेष्टित नहीं है, अपितु एक विराट् सद्भावना लिए हुए है, जो अपनी शक्ति के अनुसार साहित्यिक भक्ति करती आरही है। मैं चाहता हूँ कि भविष्य में भी इस संस्था के अधिकृत अधिकारीगण निष्पक्षभाव से माता सरस्वती के महा मन्दिर में अपनी श्रद्धा के सुन्दर सुरभित सुमन समर्पित करते रहेंगे। इसी आशा और विश्वास के साथ।

—इन्द्रनाथ मोदी
(न्यायमूर्ति—राजस्थान हाईकोर्ट)

जोधपुर
अप्रेल १९६०

सम्पादक की कलम से

भाषण कला

कला स्वाधीन और स्वस्थ हृदय का मंगल परिपूरित अजस्र उच्छ्वास है। भूमा का मधुमय वरदान है जीवन शोधन की प्रक्रिया है, जीवन विकास का साधन है, जीवन व्यवहार की पद्धति है जिसके द्वारा सत्यं शिवं सुन्दरम्' का साक्षात् कार होता है।

कला क्या है ? इस पर पाश्चात्य और पौर्वात्य प्रतिभा सम्पन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। फिर भी निश्चित परिभाषा के अभाव में इतना तो कहा ही जा सकता है कि अंतर के रस पूर्ण अमूर्त भावों की सजीव अभिव्यंजना कला है, जो सत्य शिव और सुन्दरम् के द्वारा हमारे हृदय की कोमल तंत्रियों को भंकृत करती है। इस दृष्टि से भाषण भी एक अनूठी कला है जिसके द्वारा कलाकार उत्तम चिन्तन प्रस्तुत करता है जिसमें युग युग तक मानव संस्कृति सात्त्विक आनन्द का अनुभव करती है। यदि कला क्षेत्र से भाषण को कुछ क्षणों के लिए एक किनारे कर दिया जाय तो कला क्षेत्र की चमक-दमक कम हो जायगी और वह एक प्रकार से धुंधला सा प्रतीत होगा। इसका एक कारण है कि भाव प्रकाशन के क्षेत्र में भाषण से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है।

भाषण कला का चमत्कार

हिटलर का कहना था कि 'सभी युगान्तकारी क्रान्तियों का जन्म लिखित शब्दों से नहीं बल्कि ध्वनित शब्दों से हुआ है।

वाक्य बल से जो कार्य हो सकता है वह तलवार के बल से नही हो सकता। इतिहास साक्षी है, भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, अरस्तू, मार्टिन लूथर, अब्राहम लिंकन, जार्ज वाशिंगटन, नपोलियन, चर्चिल, हिटलर, लेनिन, स्टालिन शंकराचार्य, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, रामतीर्थ, महात्मा गांधी और सुभाष बोस आदि ने अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा जो धर्म समाज और राजनैतिक क्षेत्र मे क्रान्ति का शंख फूका वह किससे छिपा हुआ है?

प्रस्तुत उपक्रम का महत्व

"जिन्दगी की मुस्कान" एक जीवनदर्शी सफल अभिभाषक सन्त के अभिभाषणो का सुन्दर संग्रह है, जो आधुनिक समाज को उद्‌बुद्ध करने वाले हैं, युग धर्म की व्याख्या को सही माने मे चरितार्थ करने वाले है और समाज के सर्वांगीण हित मे योग दान देने वाले है। इन प्रवचनो मे व्यर्थ के काल्पनिक आदर्शों के गगन की उडान नही है, न बौद्धिक विलास ही है और न धर्म सम्प्रदाय, राष्ट्र के प्रति व्यक्तिगत या समूहगत आक्षेप ही है। अभिप्राय यह है कि प्रस्तुत पुस्तक मे सभी भाषण जीवन-स्पर्शी है, जीवन को उन्नत बनाने वाले है, जिन्दगी की सही मुस्कान को खिलाने वाले है, दिल और दिमाग को तरोताजा बनाने वाले है। समाज की विषमता और अभद्रता को मिटाने वाले है, प्राचीनता मे नवीनता का रग भरने वाले है सघ और राष्ट्र की अन्ध स्थिति को ज्योतिर्मय बनाने वाले है क्योकि इन भाषणो मे त्याग और वैराग्य का अखण्ड तेज चमक रहा है। अनुभव का प्रकाश जगमगा रहा है। आत्म-साधना का गभीर स्वर गूज रहा है, और मानवीय सद्‌गुणो के प्रतिष्ठान की मोहक सौरभ महक रही है।

अभिभाषक का व्यक्तित्व

श्रद्धेय मन्त्री पण्डित-प्रवर श्री पुष्कर मुनिजी महाराज का स्थानकवासी समाज के मनीषी मुनियों में वरिष्ठ स्थान है। आपका व्यक्तित्व इतना निश्छल, इतना मधुर और इतना आकर्षण शील है कि जन-गण-मन को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। आपका तप-पूत जीवन आचार और विचार का, ज्ञान और क्रिया का, प्रतिभा और उदारता का सुन्दर सरस और पावन सगम है। आप तन से सुशील, मन से मृदु, वाणी से विनम्र, बुद्धि से विचक्षण, हृदय से भावुक और विचारों से उदार हैं। आपकी भाषण शैली भी बडी ही अनूठी और निराली है। ओज भरी वाणी से जब आप विषय का विश्लेषण करते हैं तब जनता मन्त्र-मुग्ध हो जाती है। गेहूँ वर्ण की देह से देदीप्यमान स्वर्ण की सी आभा। लम्बा और भरा शरीर विशाल भाल, उन्नत नासिका, गौर और हँसता हुआ मुखडा, उपनेत्र में से चमकते हुए तेजस्वी नेत्र, सजग कर्ण, विरल रूप में सुशोभित दुग्ध-धवल केशराशि, सीधे सादे खादी के वस्त्रों में सुशोभित बाह्य व्यक्तित्व और गम्भीर गर्जना आपकी भाषण कला में चार चाँद लगा देती है। वास्तव में अभिभाषण के विशिष्ट व्यक्तित्व पर ही भाषण की उत्कृष्टता निर्भर है। जिसने एक बार आपका अभिभाषण सुन लिया है वे आपकी ओज-भरी वक्तृता से कायल हुए बिना नहीं रह सकते।

अपनी बात

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य के अभिभाषणों के सम्पादन की भावना मेरे अन्तर्मानस में चिरकाल से चल रही थी। स्नेही सतजनों

की व भावुक-भक्तों की प्रेरणाएँ भी उत्प्रेरित कर रही थीं कि शीघ्र ही ऐसे युगस्पर्शी प्रवचनों का सम्पादन और प्रकाशन होना आवश्यक है, पर स्वास्थ्य के साथ न देने से और फिशुला के आपरेशन होने से अधिक लेखन कार्य करना कठिन था, ऐसी स्थिति में चिर स्नेही कलम-कलाधर सत हृदय पण्डित प्रवर नेमीचन्द्रजी ने प्रस्तुत सम्पादन में जो सक्रिय सहयोग दिया है, वह मधुर स्मृति के रूप में सदा ताजा बना रहेगा। यदि उनका सहयोग सम्प्राप्त नहीं होता तो शायद यह कार्य इतना शीघ्र सम्पन्न न हो पाता। सेवा मूर्ति श्री हीरा मुनिजी व साहित्य रत्न श्री गणेश मुनिजी का सतत सहयोग भी भूलने जैसा नहीं है। पुस्तक के प्रकाशनार्थ सुश्रावक न्याय मूर्ति इन्द्रनाथजी मोदी, रिखबराजजी कर्णावट और माणक-मलजी भण्डारी का किया गया सफल प्रयास भी चिरस्मरणीय रहेगा।

महावीर जयन्ती
९ अप्रेल १९६०
मोदी भवन
जोधपुर (राजस्थान)

देवेन्द्र मुनि

प्रकाशक के दो बोल

'जिन्दगी की मुस्कान" पाठकों के कर कमलों में अर्पित करते हुए हमारा हृदय हर्ष एवं उल्लास से नाच रहा है। रोम रोम पुलकित हो रहा है। यह प्रकाशन इतना शानदार सुन्दर और चमकीला है जिस पर अभिमान तो नहीं किन्तु हमें सात्विक गौरवानुभूति है।

श्रद्धेय मन्त्री पण्डित प्रवर श्री पुष्कर मुनिजी महाराज स्थानकवासी समाज के सुप्रसिद्ध विचारक व चरित्र निष्ठ सन्त हैं। आपके प्रकाण्ड पाण्डित्य से प्रभावित होकर सादडी सन्त सम्मेलन ने आप श्री को साहित्य शिक्षण मन्त्री का महत्त्वपूर्ण पद प्रदान किया और सोजत तथा भीनासर सम्मेलन ने आपकी कार्य कुशलता से आकर्षित होकर आप श्री को मेवाड पञ्चमाल प्रान्त के मन्त्री नियुक्त किये।

आप श्री प्रसिद्ध प्रवक्ता भी हैं आपके प्रवचनों में सरलता मधुरता स्पष्टता और हृदयग्राहिता पर्याप्त मात्रा में रहती है जिससे श्रोता मन्त्र मुग्ध हो जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मन्त्री मुनि श्री के प्रवचनों का सुन्दर सम्पादन, सङ्कलन आकलन है।

हम यहाँ साहित्य रत्न श्री देवेन्द्र मुनि जी का हार्दिक अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकते जो मन्त्री मुनि श्री के

सुयोग्य शिष्य, तेजस्वी लेखक, और विशिष्ट सम्पादक है। जिन्होने प्रवचनो का सुन्दर सम्पादन व सकलन ही नही किया अपितु स्वास्थ्य स्वस्थ न होने के बावजूद भी प्रूफ सशोधन का सारा भार वहन कर हमारे श्रम को कम किया है। साथ ही, हम प्रसिद्ध सर्वोदयी विचारक पण्डित मुनि नेमीचन्द्रजी का पुण्य-स्मरण करना भी अपना कर्तव्य समझते है जिन्होने प्रवचनो को प्रेस लिपि व सम्पादन करने मे सहयोग दिया है जो उनकी मत्री मुनि श्री के प्रति अनन्य भक्ति व श्रद्धा का स्पष्ट उदाहरण है।

इन प्रवचनो मे कलम-कलाधरो की शैली का पूर्ण निखार है। मत्री मुनि श्री की अभिव्यक्ति को सम्पादक महोदयो ने जिस सफलता व सरलता से अभिव्यक्त की है वह सचमुच प्रेक्षणीय है।

हम यहा कृतज्ञता-प्रकाशन का यह लोभ सवरण नहीं कर सकते कि राजस्थान हाई कोर्ट के सुप्रसिद्ध न्यायमूर्ति श्री इन्द्रनाथजी मोदी – जिनकी प्रताप-पूर्ण प्रतिभा और ऊर्जस्वल व्यक्तित्व की जन-जन के मन-मन पर गहरी छाप है, जो जैन समाज के एक लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्ति व प्रौढ विचारक हैं जिन्होने कार्य मे अत्यधिक व्यस्त रहकर भी प्रस्तुत पुस्तक को नयनाभिराम बनाने का प्रयत्न किया, और भूमिका लिखने की महती कृपा की अत हम उनका हृदय से आभार प्रदर्शन करते हैं और साथ ही जिन महानुभावो ने आर्थिक सहयोग देकर अपनी दान वीरता का परिचय दिया तदर्थ हम उनके कृतज्ञ है।

अन्त मे मैं श्री जगदीशजी ललवाणी, नवयुग प्रेस, जोधपुर को धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता जिन्होने अपने व्यस्त

कार्यों के बावजूद भी इस पुस्तक को समय पर प्रकाशित करने म हमे सहयोग दिया ।

हां एक बात और है, जिसका उल्लेख करना यहां अत्यावश्यक है, वह यह है कि सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल एक अल्प साधन प्रकाशन संस्था है, इसकी ओर से कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं हम चाहते हैं कि राजस्थान की यह संस्था एक विराट प्रकाशन संस्था बने जो उदार और निष्पक्ष भाव से सत्साहित्य की सेवा करे, जिससे धर्मनिष्ठ व सुन्दर प्रकाशन जन-मन मे समादरित हो किन्तु हमारी इस अन्तरेच्छा को मूर्त रूप देने का उत्तरदायित्व लक्ष्मी व सरस्वती के वरद पुत्रो पर है । आशा है हमारी यह शुभ भावना सफल होगी ।

आशकरण भंडारी,
संयुक्त मंत्री
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
जोधपुर

प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन का समस्त आर्थिक दायित्व निम्न महानुभावो ने वहन कर साहित्यिक सेवामे जो अपनी अभिरुचि प्रकट की है तदर्थ धन्यवाद।

२५१) सन्माननीय न्यायमूर्ति श्री इन्द्रनाथजी मोदी, जोधपुर

२५१) सेठ चम्पालालजी हरकचन्दजी कोठारी,
पीपाड वाले, सरदारपुरा, जतन भवन, जोधपुर

१०१) श्रीमान् सम्पतसिंहजी सुरेशसिंहजी भाटावत, जोधपुर

१०१) „ शाह हीराचन्दजी भीकमचन्दजी, जोधपुर

१०१) „ सुखलालजी जैन, सेल टेक्स इन्सपेक्टर
सरदारपुरा जोधपुर

१०१) „ सेठ हिम्मतमलजी भगाजी गांधी
मु० आइपुरा, पो० आहोर

५१) „ सेठ पन्नालालजी छजलानी, मालीवाडा, दिल्ली

५१) „ पुखराजजी अव्वाणी, जोधपुर

५१) „ भभूतराजजी मेहता, सरदारपुरा, जोधपुर

जिन्दगी की मुस्कान

मन्त्री पुष्कर मुनि

जिन्दगी की मुस्कान

विश्व के सभी धर्मों दर्शनों विचारधाराओं, वादों और नाना विज्ञानों का चरम और परम उद्देश्य है—मानव-जीवन का सर्वश्रेष्ठ बनाना मनुष्य के अन्दर मनुष्यता जगा कर उसे देवत्व और भगवत्त्व तक पहुँचा देना। किन्तु यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है, जब मनुष्य अपनी जिन्दगी को सभाले, अपने जीवन की उज्ज्वलता और कीमत समझे मानव-जीवन की महत्ता का वास्तविक मूल्यांकन करे। जब तक कोई भी मनुष्य अपने जीवन को सही रूप मे पहिचानता नहीं है अपने जीवन की विशिष्टता का सही तत्त्व अवगत नहीं कर लेता है तब तक उस जीवन पर कोई नया रग नहीं चढ़ सकता उस पर कोई पालिश या रोगन नहीं किया जा सकता उस जिन्दगी को माजा या चमकाया नहीं जा सकता। एक रंगरेज किसी भी पुराने कपड़े पर नया रग चढ़ाना चाहता है तो उसे पहले उस कपड़े पर लगे हुए पुराने रग को साफ कर देना पड़ता है तभी वह उस कपड़े पर दूसरा नया रग भलीभांति चढ़ा सकता है इसी तरह अगर कोई व्यक्ति अपने जीवन-पट पर जो कि वर्षों पुराना है जिस पर हजारों और लाखों वर्षों से संस्कारों के रग लगे हुए हैं नया रग—जोकि रग जो चमकदार हो चढ़ाना चाहता हो तो उसे भी पहले के रंगों की शुद्धि कर लेनी पड़ेगी। अन्यथा जीवन-पट पर रग बढ़िया नहीं चढ़ेगा जीवन-पट बदरग हो जायगा। इसी प्रकार एक

चित्रकार के सामने चित्र बनाने के सभी साधन पड़े है, चित्रकार भी हाथ मे कूची लिए स्वस्थ चित्त से चित्र बनाने को तैयार बैठा है, किन्तु जिस दीवार पर वह चित्र बनाना चाहता हो, वह पहले से यदि साफ नही है, मैली है ऊबड़खाबड़ है, सम नही है, तो चित्रकार चाहे लाख प्रयत्न करले बढिया चित्र नही बना सकेगा, इसी प्रकार अगर आपकी जिंदगी रूपी दीवार मैली व ऊबड़ खाबड़ है, सम नही है और उसी पर आपको सुन्दर चित्र खींचना है, बोलती हुई तस्वीर खीचनी है तो शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और वाणी आदि सभी साधनो के होते हुए भी सुन्दर और श्रेष्ठ तस्वीर नही बनेगी, सुन्दर चित्र नहीं निर्मित होगा। आप को अपनी जिन्दगी रूपी दीवार को पहले सम करना होगा, उसके ऊबड़खाबड़पन को मिटाना होगा, मैलापन दूर करना होगा, तभी उस पर अपने विविध साधनो से सुन्दर चित्र खींच सकेंगे। अगर आपकी जीवन रूपी चादर काली है, मसौते जैसी मैली है, बदबूदार है तो उस पर दूसरा रग नही चढेगा। कवि की अपनी अन्तर्वाणी मे कहूँ तो—

"सूरदास की काली कामरी, चढे न दूजो रग।"

जिन्दगी की काली कम्बल या मैली कम्बल पर अन्य रग चढाने का भी यही हाल है। जीवन के अद्वितीय कलाकार भगवान् महावीर ने यही बात जीवन के जिज्ञासुओ से कही थी :—

"धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ"

उसी जीवन-पट पर धर्म का रंग चढ सकता है, टिक सकता है, जो शुद्ध हो, साफ हो, निष्कपट हो।

आपका जीवन आपका सबसे अधिक मूल्यवान् धन है। भारतीय संस्कृति के महामनीषियो ने मनुष्य की बाह्य भौतिक

सम्पदायों — रगरूप, बुद्धि इन्द्रियाँ, मन, शरीर, धन धान्य, द्रव्य आदि की अपेक्षा मानव के जीवन को अधिक मूल्यवान बताया है।

इस विश्व की अपार लीला को अगर आप अपनी विवेक की खुली आँखों से देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि इस संसार में चित्र-विचित्र जीव हैं। कोई किसी रग का है कोई किसी डिजाइन का, कोई किसी आकार-प्रकार का है तो कोई अन्य ही रगरूप वाला है। विश्व की विविध-जीव-बहुलता में मनुष्य ही एक अनोखा प्राणी है। इसकी आकृति दूसरे प्राणियों या पशुपक्षियों की तरह नीचे मुह और सिर किये झुकी हुई नहीं है। ऊपर उन्नत और सीधा सिर किये है जो उसका उन्नत और सीधा बने रहना प्रगट करता है वह उसका उत्थान या ऊपर उठना ही सूचित करता है। उसका रगरूप डिल्डौल आदि सब दूसरे प्राणियों से विचित्र प्रकार के ढगके हैं। सम्पूर्ण जीवसृष्टि में मनुष्यजीवन से बढकर श्रेष्ठ जीवन नहीं है क्योंकि मनुष्यजीवन ही मुक्ति का द्वार है। मनुष्य को इतने ऊचे प्रकार का जीवन मिला है कि जिसके द्वारा वह परमात्मा तक पहुँचने की उडान भर सकता है देवत्व-तक पहुचना तो उसके लिए बड़ी आसान बात है। विश्व में जितने भी पौर्वात्य और पाश्चात्य दार्शनिक आए हैं तीर्थंकर पगम्बर सन्त, साधु ऋषि, मुनि आए हैं, सभी ने एक स्वर से मानवजीवन की महत्ता के गुणगान किये हैं। जनागमों में मानवजीवन के लिए 'देवानुप्रिय' शब्द आता है। भौतिक सत्ता के अधिष्ठाता देवों के जीवन से मानवजीवन बढकर है, इसीलिए देवताओं के लिए यह जीवन प्रिय-जीवन है। देवताओं का केवल इस हाड़-मांस के ढेर मानव-देह के प्रति

आकर्षण नही है, उनका आकर्पण मानव के आत्मा, मन, बुद्धि, वाणी और इन्द्रियो के स्वामी मानव-जीवन मे है ।

अगर आपने इन्सान की जिदगी पाई है, किन्तु आप उसका विकास करना नहीं जानते, चमकाना नही जानते, जिदगी की कोई कीमत नही समझते, कौडी के भाव इसे लुटाने को तैयार हो जाते है तो समझना चाहिए आपको मानव-जीवन मिला तो सही, पर आपने उसे समझा ही नही, उसे परखा ही नहीं, आपकी जिन्दगी मुस्काई नहीं, मुर्झाई है । जो जिदगी मुस्कराती नहीं, खिलती नही, उन्नत नहीं वनती, वह जिदगी पृथ्वी के लिए भारभूत है । वासना का वोझ ढोए वह अपनी जिदगी को गुजारे चला जारहा है । ऐसे मनुष्य की जिदगी केवल शरीर को सजाने-सवारने, धन के ढेर लगाने, महल खडे करने और विलासपूर्ण वस्तुओ के अवार लगाने मे ही खर्च होजाती है, उसकी जिदगी नीरस, निरुद्देश्य और वेखटके की जिदगी है, उस जिदगी का क्या मूल्य है, जो स्वय ही मुर्झा कर समाप्त होजाती हो, न किसी के काम आती हो, न दूसरो के लिए प्रेरणादायी बनती हो ?

कल्पना कीजिए, कोई व्यक्ति अपने मित्र को पत्र लिखना चाहता है, लिफाफा वडा मजबूत और सुन्दर है, वेलबूटे भी उस पर हो रहे हैं । आर्ट पेपर का चिकना कागज है, उसने अपने मित्र का पता भी लिफाफे पर अकित कर दिया है, किन्तु अपने मित्र को समाचार कुछ भी नहीं लिखा है, उसका मित्र लिफाफा खोलता है लेकिन उसे लिखा हुआ समाचार कुछ भी नही मिलता, तो वह कोरा लिफाफा क्या काम आया ? उस पर किये हुए वेलबूटे या अतापता किस मतलव के ?

यही स्थिति मानव-जीवन रूपी पत्र की है। अगर कोई व्यक्ति अपने शरीर रूपी लिफाफे को खूब व्यवस्थित ढंग से सजा ले पाउडर और क्रीम चहरे पर पोत ले सुन्दर रंगीन वस्त्र शरीर पर लाद ले, माणिक मोतिया व अलंकार शरीर पर धारण कर ले किन्तु जीवन में जो असली तत्त्व-सत्त्व होना चाहिए वह बिलकुल गायब हो जीवन-व्यवहार मे मनुष्यता, संयम, विनय, विवेक आदि नही हो तो वह जीवन भी बिना समाचार के लिफाफे के समान है ऐसे जीवन-लिफाफा से मानव की कोई समस्या हल नहीं होती, स्वयं अपने जीवन का अपने में निराशा पैदा होती है।

एक बगीचे मे ऐसी किस्म के फूल खिल रहे हैं जिनमे सुवास बिलकुल ही नही है केवल रंग ही रंग है तो आपको वे पुष्प आकर्षित नहीं करेंगे, आप उन फूलो के पास जाना नहीं चाहेंगे। इसी प्रकार किसी आदमी को लम्बा, चौडा सुन्दर सुरूप शरीर मिला है, किन्तु उसमे विनय, विवेक मानवता संयम सत्य अहिंसा आदि सद्गुणो की सुवास नहीं है तो वह मनुष्य ससार के समझदार लोगो को आकर्षित नहीं कर सकेगा। कवियो की कलमें लेखकों की लेखनियाँ चित्रकारों की तुलिकाएँ ऐसी सुवास रहित जिन्दगी का रेखाचित्र खींचने को उत्सुक नहीं होगी होगी तो भी घृणाभाव के साथ। जिस जिन्दगी मे सत्य, शिव और सुन्दर नहीं होता वह जिन्दगी मुर्झाई हुई है, उसके पास फटकने में लोगों को सकोच होता है ऐसी जिंदगी का अनुसरण करने का जी नहीं ललचाता। ऐसी जिंदगी और पशु की जिन्दगी मे कोई खास अन्तर नहीं होता।

संसार के इतिहास में ऐसे असंख्य उदाहरण मिलेंगे जिनके का तत्त्व-सत्त्व समाप्त हो गया था जिनकी

से मुर्झा गई थी, जिनकी जिन्दगी कषायो और विषयो की आग से बिलकुल झुलस गई थी, जिनकी जिन्दगी को ईर्ष्या की काली नागिन ने डस लिया था, जिनकी जिन्दगी को स्वार्थ और मोह के प्रबल पिशाचो ने घेर लिया था, जो जी रहे थे, किन्तु मरे हुए से. बोझिल बन कर, जीवन से निराश हो कर । जिनको अपने जीवन में कोई आकर्षण नही था, जिनके जीवन मे कोई, सौन्दय, माधुर्य, सौरभ या शिवत्व नही था । उनकी ज़िन्दगी को हम असफल जिन्दगी कह सकते है, सफल नहीं, भले ही उनके पास धन का ढेर हो, वैभव का पुञ्ज हो, साधनो का सग्रह हो।

कस और रावण की कहानी ऐसी ही कहानियाँ है, जिनके जीवन मे मुस्कान नहीं थी। ये दोनो ही बडे वैभवशाली सम्राट् थे, अनेक लोगो पर इनका प्रभुत्व था, धन की इनके पास कोई कमी नही थी, शरीर भी सुन्दर और सुपुष्ट मिला था, किन्तु इनकी जिन्दगी मे जिस चीज की कमी थी, वह थी मुस्कान । वे जीवनभर दूसरो पर अत्याचार ढहाते रहे, दूसरो की जिंदगियो के साथ खिलवाड करते रहे, दूसरो की जिन्दगियाँ उन्हें अच्छी नही लगीं, वे अपने जीवन मे दूसरो को संतुष्ट न कर सके । यही कारण है कि हर इतिहासकार या कहानी लेखक उन पर अपनी लेखनी चलाता है तो घृणा के साथ। हर विचारक उनकी जीवनी को पढता है तो उनके जीवन पर थूकता है। गोशालक और गोडसे की कहानी भी कुछ इसी प्रकार की थी, वे भी लोगो के लिए घृणापात्र बन गईं। उन्होने अपने जीवन मे अनेक सुकृत्य भी किये होगे; किन्तु उनके जीवन का प्रचुर भाग अन्तर के हाहाकार मे बीता। हर हिटलर, जो जर्मनी का सर्वेसर्वा बन कर एक दिन चमक रहा था, उसका जीवन भी घृणित और । ।८ के रूप मे व्यतीत हुआ । लोगो ने उस जीवन में

जि़न्दगी की मुस्कान नही देखी । जिस ज़िदगी मे हिंसा और प्रतिहिंसा की भावना काम कर रही हो वह ज़िदगी जनता की दृष्टि म तो अस्पृहणीय अवाञ्छनीय रहती ही है, किन्तु उस व्यक्ति को स्वय को अपनी ज़िदगी म शांति नहीं रहती, मुस्कान उसके जीवन का मुख्य अग बन कर नहा रहती ।

जापान के हीरोशिमा नगर का सवनाश हो रहा था । अणुबम से उसका जर्रा–जर्रा राख का ढेर बन गया था । इसी गर्मा–गम राख के ढेर पर दौडता हुआ एक आदमी वहाँ कुछ खोज रहा था । वह कभी इधर भागता, कभी उधर । कभी जोर से बोल उठता —

He shall go to hell, who has destroyed this beloved town of Japan

(वह अवश्य नरक म जायगा जिसने जापान के इस सुन्दर शहर का विनाश किया है ।)

कभी वह खम्भे पर चढ कर चारो ओर नजर दौडाता पर वहाँ उसे अपनी अभीप्ट वस्तु नहीं मिल रही थी । पेड पौधे पत्ते सब झुलस कर राख होगये थे । वह भी गम राख पर चलने से भुलस गया था उसका शरीर काला पड गया था।

इतने मे ही स्वयसेवको से भरी हुई एक ऐम्बुलेंस कार वहाँ आ पहुँची । स्वयसवक उसे पागल और विक्षिप्त मस्तिष्क का एक भारतीय समझ कर सहायताकेन्द्र के केम्प मे ले आए और उसकी परिचर्या की वहाँ व्यवस्था कर दी।

इधर अमरिका मे अणुबम के शोधक डा चाल्स निकोलस की शोध हो रही थी । उसकी पत्नी 'मरी और उसका प्रिय मित्र 'रोबट सिडनी' उसकी खोज क लिए दौडधूप कर रहे थे । उनके हृदय मे यह विचार तरगें उठ रही थी कि हमने

निकोलस को कितना समझाया था कि अगुवम की शोध का उपयोग करने से ससार का कितना विनाश होजायगा, जानमाल की कितनी हानि होगी, यह स्वर्गसा ससार नरक बन जायगा, लेकिन उसने हमारी बात स्वीकार न की, इसीलिए तो हमने उसका साथ छोडा, किन्तु ऐसा मालूम होता है कि उसने अपनी ४० वर्ष की शोध को सरकार के हाथो मे सौप कर ससार मे रौरव का दृश्य उपस्थित कर दिया है, फिर भी स्नेह के नाते हमे उसका पता तो लगाना चाहिए। इस प्रकार सोच कर वे उसकी प्रयोगशाला मे गये । किन्तु वहा पर एक दीवार पर 'He shall go to hell' (वह नरक मे जायगा), यही निकोलस के हाथ का लिखा हुआ वाक्य मिला । उसी समय निकोलस के बूढे नौकर टोमी ने उनसे कहा कि जिस समय रेडियो पर हीरोशिमा के नष्ट होने की खबर आई कि तुरत वे उठ खडे हुए और पागल की तरह चिल्लाते हुए आँखें बद करली, तथा यहाँ से दौडते हुए चले गए । उनके बाद उनका कोई पता नहीं ।

समाचारपत्रो में डॉ. चार्ल्स निकोलस के गुम होने के समाचार देकर 'सिडनी' और 'मेरी' अमेरिका से जब जापान पहुँचे तो उनका वहाँ शान्तिसघ के सभ्यो ने भव्य स्वागत किया और वे उन्हे सहायता-केन्द्रो के अवलोकनार्थ लेगये । वहाँ के प्रसिद्ध डॉक्टर विलियम ने उन्हे अस्पताल का निरीक्षण कराते हुए प्रश्न किया कि 'क्या आप बता सकते है कि ऐसे भयकर अणुबम का शोधक कौन था ?' सिडनी ने ज्यो ही डॉ चार्ल्स निकोलस का नाम बताया, त्यो-ही उनके कर्णकुहरो मे एक पागल की आवाज आई —

'Allas, he shall go to hell !'
'अफसोस, वह अवश्य नरक मे जायगा ।'

वे यह सुनकर एक दम चौंके और उन्हें यह विश्वास हो गया कि मालूम होता है यह पागल ही चार्ल्स निकोलस है। क्योंकि प्रयोगशाला की दीवार पर भी यही लिखा हुआ था और टोमी ने भी यही बात कही थी।

वे सीधे ही उसके पास आए और आँखों से आँसू बरसाते हुए कहने लगे— आ निकोलस, तुम्हारी यह दयनीय दशा! निकोलस भी अपनी पत्नी और प्रिय मित्र को पहचान गया और लड़खड़ाती हुई जबान से अपने दुष्कृत्य पर पश्चात्ताप करते हुए उसने कहा—'मेरी! तुम्हारी बात सच्ची सिद्ध हुई। मैं अवश्य ही नरक में जाऊँगा! जो दूसरों की मुस्कान को समाप्त कर स्वयं मुस्कराता रहना चाहता है वह केवल कल्पना के पंख पर उड़ान भरता है। मैंने दूसरों को नष्ट करने के लिए अपनी शोध का उपयोग किया, जिसके कारण मेरी मुस्कान आज विदा हो रही है।

यह है जिन्दगी का दिवाला!, जहाँ जिन्दगी में मुस्कान नहीं होती, वहाँ अकृत्य करने पर कितना दुःख उठाना पड़ता है? निकोलस की जिन्दगी से हम समझ सकते हैं कि जिसने अपने जीवन के ४० वर्ष जिस भयंकर संहारकारी वस्तु की शोध में लगाए आखिर उसके वस्तुतत्त्व को समझ जाने पर भी बरबस उसे जिन्दगी का मोह अनिष्ट की ओर खींच ले गया और उसकी जीवनलीला भी इसी प्रकार मुस्कान से रहित होकर समाप्त हुई। अगर वह चाहता और अपनी जिन्दगी के अमूल्यतम साधना—बुद्धि, हृदय, इन्द्रियाँ आदि का अच्छे कार्यों में सदुपयोग करता तो आज उसे जिन्दगी में असली मुस्कान मिलती, उसके जीवन की सभी कलाएँ खिल जातीं।

आपने चन्द्रमा को तो देखा ही है, देखते ही है। चन्द्रमा में जब सभी कलाएं खिल जाती है तो वह पूर्णिमा का चन्द्र कितना मुस्कान भरा होता है, वह लोगों के लिए कितना आह्लादक होता है, कितना स्पृहणीय होता है, वह कितना शान्तिदायक लगता है ? पूर्णिमा के चन्द्र को सभी प्राणी आनन्द से, प्रसन्नता से निहारना चाहते है, इसका रहस्य ही यह है कि वह अपने आप में समस्त कलाओं सहित विकसित है, पूर्ण है।

हाँ, तो इसी प्रकार जिन पुरुषो का जीवन समस्त कलाओं के साथ खिल जाता है, उनकी जिन्दगी मुस्कानभरी होती है, अनुकरणीय होती है, समस्त प्राणी उनकी जिन्दगी की मगल कामना करते है, सभी के लिए वह जिन्दगी आह्लादक होती है, स्पृहणीय होती है, शान्तिप्रदायक होती है। मर्यादापुरुषोत्तम राम, कर्मयोगी कृष्ण, भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध, ईसामसीह, महात्मा गाँधी आदि ससार के महापुरुषो का जीवन पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुस्कान से परिपूर्ण था, उनके जीवन मे शान्ति, प्रेम, क्षमा, न्याय, सत्य आदि की कलाएँ खिली हुई थीं। यही कारण है कि आज हजारो वर्ष या कई वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी विश्व के सभी मानव उनके जीवन की गुणगाथा गाते हैं, उनके जीवन को स्पृहणीय मानते है, उनके जीवन को अनुकरणीय और शान्तिप्रदायक समझते है। उनकी जीवनकला मुस्कान के साथ खिल गई थी। उनके जीवन मे सहज आनन्द प्रस्फुटित हो गया था, निकोलस द्वारा अन्वेषित अणुबम की जगह उन्होने प्रेमाणुबम की शोध की थी, और प्रेम की परिपूर्णता और व्यापकता ही उनकी जिन्दगी के प्याले को मुस्कान से लबालब भर सकी थी। जीवन की कला उन्होने भलीभाति हस्तगत करली थी। इसीलिए वे बडी से बडी विपत्ति से, तूफान से और दु खो से हस कर खेले, उनका दिल कभी मुर्झाया नहीं, उन्हे कभी उत्तम कार्य करते

हुए निराशा या थकावट नहीं आई इसीलिए व अपने जीवन की मुस्कान को अन्त तक टिका सके। योगीश्वर आनन्दघनजी भी जिन्दगी की मधुर मुस्कान लिए अपना जीवन बिता गये। उनके जीवन में जो मस्ती थी, फक्कड़ता थी और निर्द्वन्द्वता थी वह उनकी जिन्दगी की मुस्कान की प्रतीक थी।

योगीश्वर आनन्दघनजी बड़े निस्पृह संत थे। एक बार व किसी गाँव में ठहरे हुए थे। वहाँ का यह नियम था कि कोई भी साधु उस गाँव में तभी व्याख्यान प्रारम्भ कर सकता था, जब वहाँ के नगर सेठ व्याख्यान में आ जाते। योगीश्वरजी को इससे कोई मतलब नहीं था कि व दूसरे श्रोताओं की परवाह न करके एक धनिक और प्रमुख सम्पन्न व्यक्ति की व्यर्थ में ही खुशामद करते या उनको निरर्थक ही बढ़ावा देते। संयोगवश, एक दिन नगर-सेठ व्याख्यान में कुछ देर से पहुँचे। आनन्दघनजी का व्याख्यान चालू हो गया था। नगर-सेठ को यह बहुत अखरा, व मन मसोस कर उस समय तो चुपचाप बैठ गये। व्याख्यान समाप्त होने के बाद वे आनन्दघनजी के पास आये और बोले— 'महाराज आपको यहाँ की प्रथा का और नियम का पता नहीं है? यहाँ व्याख्यान तभी शुरू हो सकता है जब नगर-सेठ आ जाय? आपने गाँव की मर्यादा का भंग किया है? आपको सोच विचार कर यह कदम उठाना चाहिये था। आनन्दघनजी फक्कड़ साधु थे उन्हें क्या मतलब था कि वे नगर-सेठ के लिए व्याख्यान देने में देर रहें। वे अपनी मस्ती में बोले— मैं इन अनुचित मर्यादाओं का जो सिर्फ भौतिक सम्पत्ति वालों को ही पक्षपात करने वाली हों नहीं मान सकता। सेठ रोष में भर कर बोले— तो महाराज आपको रहना तो अभी इसी गाँव में है इसी सम्प्रदाय में है फिर इतनी ऐंठ करके आप अपनी जिन्दगी कैसे बिताएँगे? आनन्दघनजी ने देखा सेठ का पारा गर्म हो गया है। व शान्तभाव से बोले— सेठजी, ऐसा है तो मैं अभी इसी

गाँव से चल देता हूँ और सम्प्रदाय के साथ मैंने अपनी
आत्मा को नही बाँध लिया है, अगर आपको यह गर्व हो कि
आनन्दघन को हम ही पालते हैं तो, यह मिथ्या धारणा है।
मुझे आपके आलीशान उपाश्रयो की आवश्यकता नहीं है, और न
सेठ-सामन्तो की गुलामी ही पसन्द है।" यो कह कर वे उसी समय
जगल मे साधना करने चले गये और मस्ती से विभिन्न स्थानो मे
भ्रमण करते हुए अपनी साधना करने लगे। यह है जिन्दगी की
मुस्कान का एक नमूना। जहाँ ऐसी मुस्कान आ जाती है, वहाँ
कोई भी उत्तम कार्य, उत्तम साधना, किसी विपत्ति, दुख या आफत
मे रुकी नही रहती। स्वय योगीश्वर आनन्दघनजी अपनी रचित
तीर्थंकर चौवीसी मे तृतीय तीर्थंकर सम्भवनाथजी की प्रार्थना करते
हुए जीवन की असली मुस्कान का रहस्य प्रगट करते है—

"सेवन-कारण पहली भूमिका रे।
अभय, अद्वेष, अखेद ॥
भय चचलता जे परिणाम नी रे,
द्वेष अरोचक भाव।
खेद प्रवृत्ति करता थाकिये रे,
दोष अबोध-लखाव ॥
सभव देव ते धुर सेवो सवेरे,
लही प्रभु सेवन-भेद ॥"

कवि आनन्दघनजी जिन्दगी की मुस्कान को प्रगट करने के लिए
कितनी गहराई मे चले गये है। वे कहते है कि प्रभु की सेवा करने
के लिए यानी प्रभुपद प्राप्त करने के लिए, जीवन को प्रभुत्व सम्पन्न
बनाने के लिए प्रभुत्व सेवन का रहस्य समझ कर सेवन करो।

प्रभुत्व सेवन का मतलब ही जिन्दगी की वास्तविक मुस्कान प्राप्त करना है जिंदगी का प्रभुत्व की मस्ती से ओतप्रोत करना है। उसके लिए पहले भूमिका प्राप्त करो। उसकी पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए सर्व प्रथम तीन तत्वों की आवश्यकता है—अभय, अद्वेष और अखेद।' अभय का मतलब यों तो निर्भयता होता है परन्तु यहां उस बाह्य अक्खड़पन या अटसट रूप से औघड़ जीवन बिताने को या महारकारी शस्त्रास्त्र या अणु अस्त्रों की खोज करने की निडरता अथवा एवरेस्ट जैसे उत्तुंग गिरिशिखर पर चढ़ने की निर्भयता को अभय नहीं कहा है। अगर कोई व्यक्ति लाखों सुभटों के बीच रणक्षेत्र में सीना तान कर दनादन गोलियां चलाता है या किसी भी भौतिक वस्तु की, संहारक शस्त्रास्त्र की खोज करने का साहस दिखाता है तो उसके अंतर की भावना का हृदय की धड़कनों को टटोलने से पता लगेगा कि उसके दिल में जीवन की कितनी चञ्चलता है जीने की मोहवृत्ति उसके दिल की धड़कनों को किस प्रकार बढ़ा रही है? बाहर से वहां निर्भयता का स्वांग दीखेगा, परन्तु भीतर की नब्ज टटोलने पर मृत्यु का भय स्पन्दन करता हुआ दिखाई देगा। इसलिए निर्भयता का रहस्यार्थ यहां आन्तरिक वृत्तियों की चञ्चलता के अभाव से है। आंतरिक परिणामों की जहां चञ्चलता हो, वहां बाह्य निर्भयता या बाह्य मुस्कान जीवन को प्रभुत्व सम्पन्न नहीं बना सकती है।

जिन्दगी की मुस्कान का दूसरा तत्त्व उन्होंने बताया है—अद्वेष। अद्वेष का मतलब किसी से द्वेष नहीं करना, इतना ही नहीं है। आप जानते हैं कि सामान्य पत्थर या एकेन्द्रिय जीव किसी से द्वेष नहीं करते इतने से ही उन्हें अद्वेषी कोई नहीं कह सकता। जहां उदासीनता घृणा या सर्वथा उपेक्षा-वृत्ति हो वहां भी अन्दर ही अन्दर द्वेष घुड़दौड़ करता हुआ नजर आता

है। जीवन से हार कर बैठ जाना, किसी भी मानव ने आपकी बात नहीं मानी, इसलिए उससे किनारा करके बैठ जाना यह भी अद्वेष नही है। उसके मन मे अन्दर कुढन नहीं होनी चाहिए। जहाँ मन के पर्दे मे द्वेष दावानल सुलग रहा हो, वहाँ उदासीनता या किनाराकसी की राख ऊपर से डाल देने पर ही द्वेषाग्नि बुझ नहीं जाती, प्रत्युत किसी निमित्त या प्रसग की हवा लगते ही भभक उठती है। इसलिए आनन्दघनजी की दृष्टि से द्वेष का मतलव अरोचक-भाव है। किसी भी व्यक्ति से, पदार्थ से या विचार से केवल किनाराकसी कर लेना, उसमे रुचि न दिखाना, उसके प्रति घृणा का भाव दिखाना, उससे निष्क्रिय उदासीनता धारण कर लेना भी द्वेष की कोटि मे ही आता है। जहाँ द्वेष होता है वहाँ मोह, आसक्ति, मूर्च्छा आदि निश्चित ही अन्दर की तह मे छिपे होते हैं। इसलिए अपने किसी स्वार्थ के न सधने, मोह की भूख न बुझने, मूर्छा को दानापानी न मिलने की वजह से किसी व्यक्ति से न वोलना, उसके साथ ससर्ग न रखना, उससे किनारा कसना, उससे उदासीनता रखना या उसके प्रति उपेक्षा-भाव वताना अद्वेष नहीं है। अद्वेष का असली रूप वहा है, जहा विरोधी से विरोधी व्यक्ति के प्रति भी मन मे सद्भाव हो, मिलन मे प्रेमभाव हो, वाणी मे स्नेह की अभिव्यक्ति हो, हृदय मे उसके प्रति प्रेम भरा स्थान हो, आत्मा मे करुणा हो। उसके विरोध के कारण अपनी किसी शुभ या शुद्ध प्रवृत्ति को रोकना, सत्य जची हुई सत्क्रिया से उदासीन हो जाना, तूफान खडा हो जाने के डर से सत्कार्य से विरत हो जाना, अरुचिभाव धारण कर लेना भी एक प्रकार से द्वेषवृत्ति मे ही आ जाता है। जहाँ द्वेषवृत्ति या अरोचकवृत्ति होती है,

वहा जीवन म असली मुस्कान नहीं आती, जीवन की मस्ती का आनन्द नही आता ।

और जिन्दगी की मुस्कान का तीसरा तत्त्व है—अखेद । अखेद का मतलब खिन्न न होना इतना ही नही है । एक मजदूर किसी काम म थकता नहीं ह खिन्न नही होता या एक वैज्ञानिक अणुबम उद्जनबम आदि के निर्माण म खिन्न नहीं होता इतने मे ही वहाँ अखेद-भाव नही आ जाता । क्योकि वहाँ बुरे कार्य का पश्चात्ताप बुराई का काटा दिल म चुभा रहता है जो बारबार पीडा पहुँचाता है खेद पहुँचाता ह । मनुष्य पहले से ही विवेक के प्रकाश म ऐसी प्रवृत्ति करे ऐसा कार्य करे जिससे फिर पश्चात्ताप करने का मौका न आए । जहाँ एक बार हाथ म तीर छूट जाता ह वह फिर हाथ म नहीं आता । इसलिए किसी भी कार्य का तीर छोडने म पहले मनुष्य को हजार बार सोच लेना चाहिए ताकि जीवन की मुस्कान मे आगे जाकर भग न हो ।

हाँ तो अखेद का अर्थ श्री आनन्दघनजी करते है सोच विचार कर प्रवृत्ति करते हुए थकना नहीं क्योकि प्रवृत्ति म दोष तभी आता है जब वह अज्ञानपूर्वक होती ह नासमझी म होती है तो उसके पीछे खेद-खिन्नता जुड जाती है और वह प्रवृत्ति सारी उम्रभर हृदय मे कसक पैदा करती रहती है । इसलिये समझ बूझ कर अपनी दृष्टि से सत्य जची हुई हितकर जची हुई किसी सत्प्रवृत्ति को शुरू करने के बाद थकना नहीं रुकना नही, खिन्न न होना उसमे ग्लानि न आना, उसे करते हुए भार न लगना यही अखेद का रहस्यार्थ है ।

हा तो अगर मानव अपने जीवन म जिन्दगी की मुस्कान के इन तीनो तत्त्वो को अपना ले तो उसका जीवन सम्पूर्ण

वाले चिंतित रहने लगे। इस प्रकार अब वह राजा और उसका परिवार वाले सभी गमगीन से रहने लगे जिन्दगी की मुस्कान भूल गए। उनके मस्तिष्क में हर वक्त ज्योतिषी की बात घूमने लगी। राजा और रानी अपने मूल कर्त्तव्य से हाथ धो बैठे। व्यवहार के नाते वे उस लड़के का पालन पोषण भी करते थे उसे शिक्षण भी दे रहे थे, उसे नीति धर्म भी सिखा रहे थे, सब कुछ कर रहे थे, पर उनके हृदय में इन सब के प्रति घृणा भाव सा हो रहा था। जवानी आने तक का जो उसे खिलाने पिलाने, पालन पोषण करने का पिता का नैसर्गिक आनन्द था कुदरती मुस्कान थी, जवानी आने तक जो कर्त्तव्य पालन की मधुर मुस्कान आनी चाहिए थी वह नहीं आ रही थी। बाल की बात ने उनकी जिन्दगी का सारा रस सारी मुस्कान समाप्त कर दी। यह सारा परिश्रम और पालन पोषण केवल औपचारिक था। इसी तरह बालक की माता भी उसे गोद में लेती, खिलाती, पिलाती, सब कुछ करती लेकिन रह रह कर उसके दिमाग में जवानी में विदाई होने की बात चक्कर काटती रहती। उसके स्नेह की धारा का जो आनन्द उसे आने वाला था, जीवन में मुस्कान की जो मस्ती आने वाली थी वह सूख रही थी।

हाँ तो मैं आपसे कह रहा था कि इसी प्रकार के जिन्दगी में कई प्रसंग आते हैं जब मनुष्य कर्त्तव्य की धारा पर न चल कर जीवन को भय और प्रलोभन की धारा की ओर मोड़ लेता है भय और प्रलोभन से प्रेरित हो कर ही काम करता है, तो उसके जीवन की असली मुस्कान समाप्त हो जाती है।

आज कल हमारे धर्म धुरंधर कहलाने वालों में जिन्दगी की असली मुस्कान क्यों नहीं है? या धार्मिक क्रियाओं में रात दिन

डूबे रहने वालो के जीवन मे आनन्द क्यों नही है ? इस का कारण यदि ढूढा जाय तो यही प्रतीत होगा कि उनके सारे क्रिया कलाप प्राय भय और लोभ पर आधारित है। या तो स्वर्ग का प्रलोभन है या नरक का भय है, अथवा इस लोक में ले तो या तो स्वार्थ सिद्धि होने, प्रसिद्धि बढ जाने, माला माल हो जाने का लोभ है या फिर सरकारी सजा का भय है, वेइज्जती का डर है, स्वार्थ हानि का भय है। कर्त्तव्य की असली धारा पर उनकी जीवन सरिता नही वह रही है। इसी कारण धर्म क्रियाओ में उन्हें वह रस नहीं आता, वह आनन्द नही प्राप्त होता। धर्म के विविध कार्य भी उपर्युक्त दोनो वृत्तियो को सामने रख कर किये जाते हैं।

भगवद्भक्त थेरिसा का नाम आपने सुना होगा। वह महान् दार्शनिक थी, विचारक थी। वह अपने दाहिने हाथ मे मशाल और वाये हाथ मे पानी की वाल्टी लेकर नगर के चौराहों, वाजारो और गलियो मे मे जव गुजरती तो जनता के लिए एक कुतूहल का विषय वन जाता। प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न के उत्तर मे वह यही कहती कि मशाल की आग से मैं स्वर्ग के सुख को जलाना चाहती हूँ और वाल्टी के पानी से नरक की आग को बुझाना चाहती हूँ। जिससे इन्सान स्वर्ग की रगीन कल्पनाओ का शिकार न वन कर और नरक के भयानक दृश्यो से प्रभावित न हो कर धर्म का पालन करे, ईश्वर भक्ति करे और कर्त्तव्य निष्ठ वने।" लोगो ने पूछा—"तुम्हे यह कल्पना कैसे सूझी ?' बुढिया थेरिसा ने कहा—"इस विराट् विश्व मे जितने भी साधक है, उनमे से किसी के दिमाग पर नरक का भयावना भूत सवार है, तो किसी के मस्तिष्क मे स्वर्ग की सुनहरी कल्पनाएँ दौड रही है, कोई भी कर्त्तव्यनिष्ठ वन कर जिन्दगी की असली मुस्कान

को प्रगट करने के लिए तयार नहीं है । साथ ही किसी को किसी बात का भय है, इस लिए वह अपनी साधना कर रहा है या सत्काय कर रहा है किसी को अपनी स्वाथ हानि, बेइज्जती या कमाई न होने का डर है, इसलिए सत्काय कर रहा है किसी को अपनी स्वाथ सिद्धि होने प्रतिष्ठा बढाने मालामाल होने आदि का कोई लोभ है, इसलिए वह सत्काय कर रहा है। हजारों लाखों साधकों के ऊपर य रंग चढ़े हुए हैं । इसलिए मैं स्वग के लालच या इहलोक के रंगीन प्रलोभन को आग लगाने के लिए मशाल अपने हाथ में थामी हुई हूं और भय की आग को बुझाने के लिए पानी की बाल्टी ले रखी है। मतलब मैं भय और लाभ दोनों को मिटा देना चाहती हूं । मैं अपने मन मे और समाज के मन में यह भाव पैदा कर देना चाहती हूँ कि जिन्दगी की मुस्कान कत्तव्य की धारा पर बहने मे प्राप्त हो सकती है धर्म, धर्म के लिए हो सत्य पालन सत्य के लिए हो यही मेरी भावना है ।

बुढिया की बातों से यह सिद्धान्त निकल आया है कि मनुष्य को अपनी जिन्दगी कांटों कंकरों आंधी तूफानों से नहीं डरते हुए और प्रलोभनों के जाल में नहीं फसते हुए बितानी चाहिए तभी उसमें मुस्कान आ सकती है ।

जिन्दगी की मुस्कान आत्मा सहित शरीर के सभी अवयवों की मुस्कान है । जहाँ केवल शरीर की या शरीर के अवयवों की ही मुस्कान हो, आत्मा में मुस्कान न हो वह सम्पूर्ण मुस्कान नहीं कही जायगी । क्योंकि आत्मा तो सारे शरीर का, एवं इन्द्रियों, मन और बुद्धि आदि की मुस्कान का पावर हाउस है। अगर आत्मा में मुस्कान नहीं है तो बौद्धिक, मानसिक, हार्दिक शारीरिक या ऐन्द्रियक मुस्कान जिन्दगी को उतनी शक्तिशाली

नहीं बना सकती। फिर भी ये सब मुस्कानें जिन्दगी की मुस्कान को सर्वागसम्पूर्ण बनाने मे काफी सहायक है। वसन्त ऋतु आती है तो केवल पेड़ो के नये पत्ते ही नहीं आते, पुष्प, मजरी, फल, कोपल, छोटी टहनियाँ आदि सब के सब नये रूप मे आते है, सजधज कर आते है। और वसन्त की वह मुस्कान सर्वागपूर्ण होती है। सारी प्रकृति ऐसी लगती है मानो नया परिधान पहन लिया हो। उधर कोकिला की कुहुक शुरू हो जाती है, इधर रगविरगे फूलो पर भौरो और तितलियो की दौड शुरू हो जाती है। एक ओर पुराने पत्ते सब झडने शुरू हो जाते है, दूसरी ओर से सर्वत्र, हरे हरे सुकोमल नये पत्ते लगने शुरू हो जाते है। चिडियो की चहचहाहट, तोतो और अन्य पक्षियो का वसेरा भी वहाँ होने लगता है। इस प्रकार वसन्तऋतु के सभी अङ्गोपाङ्ग मिल कर प्रकृति की मुस्कान पूर्ण रूप से वढा देते है। इसी प्रकार जिन्दगी की मुस्कान को वढ़ाने के लिए आत्मा तो मुख्य नायक है ही, मन, वुद्धि, हृदय, इन्द्रियाँ और तन भी उसके पूरे पूरे सहायक है।

सर्व प्रथम मानसिक दृष्टि से मुस्कान को ले ले। मानसिक दृष्टि से मुस्कान वहाँ होती है, जहाँ जीवन अनेक सकटो, तूफानो विपत्तियो, वाधाओ आदि से घिर जाता है, जीवन मे प्रगति करने का कोई भी रास्ता खतरे से खाली नही होता, ऐसे समय मे मनुष्य का कच्चा मन हार खा जाता है, डरा मन, मरा मन या औंधा मन कर्त्तव्य पथ से फिसल जाता है, झटपट सीधी सरल राह पर भटक जाता है। मानसिक दृष्टि से सच्ची मुस्कान वही है जहाँ मन वडी से वडी कठिनाइयो मे पहाड जैसा अडिग रहता हो, जरा भी अपने ध्येय से डिगना नही हो। जिस मन मे सच्ची मुस्कान नहीं होती, वह पेड जैसा होता है, वाह्य ईष्ट–

अनिष्ट सयोगा रूप हिलोरा स हिला करता है वह कभी इधर डालता है ता कभी उधर। अपन ध्येय पर अटल नहा रहता। ऐसा मन मनसूबा की दुनिया मे ज्यादा विचरण करता है चिता की चिता म भी जलता रहता है, कभी-कभी गगनचुम्बी कल्पनाश्रा की उडानें भरता है यथाथ वाद की भाषा मे नही सोचता तथ्य की भाषा म अपन सामने आने वाली समस्याश्रा का विश्लेषण नही करता। जब कि तिनके की तरह और भी ज्यादा नाजुक मन वाल तो जरा-जरासी बात म भाग छूटते ह। उन्हें बाह्यसयोग का हलका-सा झोंका भी कही का कही फक दता है। भले ही लाखा रुपया का उनके पास ढेर हो पुत्रा से घर भरा हा, आलीशान बगल हा, पर उनका नाजुक मन उनकी मानसिक मुस्कान को क्षण भर टिकने नही देता। व थोडासा कष्ट पडने पर हाय-हाय करने लगत ह, थोडसी आपत्ति आते ही कत्तव्य से भाग छूटते ह, हर दम किसी न किसी चिन्ता के झूल पर झूलते रहते ह। आसमानी कल्पनाए सुनने मे ही उनका मन चलायमान हा जाता है। लेकिन मान सिक मुस्कान जिसके मन म खिल-खिला कर हस रही है, वहाँ मन का कोई भी कोना ऐसा न मिलगा, जहाँ भय और लोभ के कारण विचलितता पदा हो, वहाँ ता कर्त्तव्य की तीक्ष्ण धारा पर मन चलता रहगा, चट्टान आएगी तो उससे भी टकराकर, बुराइया का गन्दा पानी आएगा तो उससे भी सघष करत हुए।

बात बहुत पुरानी है स्यालकोट (सिगालकाट) की। वहाँ एक बार बौद्धसघ का सम्मलन हुआ। उसम यह विचारविमश हो रहा था कि 'इस शहर में एक विद्वान् रहता है जो बौद्ध श्रमणा को घृणा की दृष्टि स देखता है, कौन ऐसा भिक्षु है

जो उस ब्राह्मण के हृदय की सकीर्णता को दूर कर सके, घृणा से उसे स्नेह और प्रेम की पवित्र राह पर मोड सके।'

एक श्रमण ने इस महान् कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रतिज्ञा की, कि मैं स्नेह और सद्भावना से उसके कोमल हृदय को जीतने का प्रयत्न करूगा। श्रमण, हाथ में पात्र लेकर उस विज्ञ-विप्र के यहाँ पहुँचा, किन्तु वहाँ तो पहले से ही मनाई की हुई थी, वार्तालाप करने के लिए। घर के सभी सदस्य उसे नफरत की निगाह से देखने लगे। श्रमण को भिक्षा नही मिली, वह पुन लौट आया अपने स्थान पर, दूसरे दिन फिर पहुँचा भिक्षा के लिए किन्तु वहाँ तो उसे निराशा देवी की पद झकार ही सुनने को मिली। प्रतिदिन वह उसके द्वार पर जाता और बिना कुछ लिए, मुस्कान बिखेरता हुआ, लौट जाता। दस माह का दीर्घ काल व्यतीत हो गया किन्तु श्रमण के मुखपर खिन्नता के चिन्ह नही थे, वही मधुर-मुस्कान अठखेलियाँ कर रही थी। उसकी शान्ति व सहिष्णुता को देखकर सभी अवाक् थे, चकित थे।

एक दिन पण्डितानी ने, घर में किसी को न देखकर धीरे से कहा- आप मेरे द्वार पर प्रतिदिन आते है भिक्षा के लिए, किन्तु मै पराधीन हू, घर के मालिक ने इन्कार कर रखा है देने के लिए! उनकी बिना आज्ञा मैं नही दे सकती।

श्रमण ने मुस्कराते हुए कहा- बहिन! सन्त के लिए भिक्षा की कोई कमी नही है, बहुत से माई के लाल देने वाले हैं। मुझे देने से यदि तुम्हारे घर मे द्वेष की दावाग्नि प्रज्वलित होती हो तो ऐसी भिक्षा मुझे नही चाहिए। श्रमण उलटे पैरो लौट गया, "विहार" की ओर। मार्ग में उसे वही विद्वान् मिल गया जिसे वह उपदेश देना चाहता था।

भिक्षु का मानो हाथ खाली देखकर विद्वान् ने मजाक करना चाहा। उसने भिक्षु से पूछा— तुम कहाँ गये थे? क्या कुछ मिला है?

श्रमण ने वाणी में मिश्री घोलते हुए कहा— विप्रवर। मैं आपके घर भिक्षा के लिए गया था। आज मुझे महती प्रसन्नता है कि पण्डितानी ने इस माह के बाद कुछ दिया है।

'कुछ दिया है' यह सुनते ही विप्रवर तो क्रोध से बेभान हो गए। श्रमण को वहीं छोड़कर वे सीधे ही घर पहुँचे, और लगे पण्डितानी पर बरसने, बतला आज तूने क्या दिया है उस साधु को? पतिदेव! मैंने तो कुछ भी नहीं दिया, आपकी आज्ञा की अवज्ञा मैं किस प्रकार कर सकती हूँ।

पण्डितजी घर से बाहर निकल आये और लगे कुत्तों की तरह उफनने भौंकने— भाइयो! कलियुग आ गया है! कितना आश्चर्य है! साधु बनकर ये लोग दुनिया को ठगते हैं कितना असत्य बोलते हैं देखो न! अभी अभी इस साधु ने कहा था पण्डितानी ने मुझे कुछ दिया है। मैं इस साधु से पूछता हूँ, बतला तुझे क्या दिया है।

श्रमण ने मधुर-मुस्कान के साथ कहा— पण्डित महोदय आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पण्डितानी ने मुझे 'ना' दिया है। आप यह जानते हैं कि मैं कई बार से आपके द्वार पर प्रतिदिन आता हूँ। किन्तु आज से पूर्व मुझे कभी ना नहीं मिला। आज ना मिला है तो वह दिन भी दूर नहीं है जिस दिन हाँ मिलेगा।

श्रमण के इस निर्भीक उत्तर को सुन कर पण्डितजी का क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने पूछा— मुनिराज! यह प्रणाम कब तक

प्रारंभ रहेगा ? भिक्षुक ने उसी शान्ति के साथ कहा– "जब तक यह जीवन है। विद्वान् उनके इस उत्तर को सुनकर अत्यधिक प्रभावित हुआ ! धन्य है उस जीवन को, आप मनुष्य नहीं, देवता हैं। दस माह में आपको कभी सम्मान नहीं मिला, अन्न का दाना भी नहीं मिला। फिर भी मन की अतुल मुस्कान के साथ संतुष्ट हो कर चले जाते। धन्य है आपकी मानसिक सहिष्णुता और मुस्कान को ! इसमें कितनी स्निग्धता और शान्ति है" ब्राह्मण उसी समय भिक्षु के चरणों में गिर पड़ा और क्षमायाचना करने लगा। बोला– "मैं आपको समझ नहीं पाया था, आप तो मेरे जीवन को स्पर्शदीक्षा देने आए ! मेरे सौभाग्य ने ही आपके मन को ऐसी प्रेरणा दी है।" ब्राह्मण उन्हें घर पर ले गया, भिक्षा दी और अपना जीवन सात्त्विक ढंग से बिताने लगा।

यह है मानसिक मुस्कान का सच्चा निदर्शन ! बौद्धिक दृष्टि से मुस्कान वहाँ होती है, जहाँ मनुष्य प्रत्येक प्रसग पर सात्त्विक बुद्धि से, व्यवसायात्मिका बुद्धि से कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का सही निर्णय कर ले। जहाँ बुद्धि राजसी होती है, वहाँ वह अपनी चञ्चलता के कारण गलत निर्णय करा देती है, गुमराह कर देती है, कभी–कभी वह मारक हो जाती है। ऐसी बुद्धि विध्वन कारिणी होती है, तारक और रक्षण कारिणी, या हितकारिणी नहीं। जैसे निकोलस की बुद्धि तो बहुत पैनी थी, किन्तु थी रजोगुणी इसलिए वह मारक थी, मारक बनी। इसी प्रकार तमोगुणी बुद्धिवाला जडता का प्रतिनिधि होता है। वह सही या गलत कुछ भी सोचता नहीं। दूसरो के गलत सोचे गये रास्ते पर बिना सोचे समझे सहसा चल पडता है। ऐसी जड बुद्धि की अपेक्षा चञ्चल बुद्धि वाला कुछ ठीक है। तामसी बुद्धि वाला मनुष्य अधिकतर अन्ध विश्वासी, अन्ध श्रद्धालु अन्धानुकरणी,

कुरुढिपरायण एव विवक–भ्रष्ट होता है। इन नाना– राजसी और तामसी बुद्धिवाला के जीवन में सच्ची बौद्धिक मुस्कान नहीं होती। जहाँ बुद्धि मवहितकर कार्यों में लगती है, वहीं बौद्धिक मुस्कान प्रगट होती है। वदिक ऋषिया न धन की दरिद्रता की अपक्षा बुद्धि की दरिद्रता को वहुत खतरनाक वताया ह । साथ ही उन्होने अपने स्नातका को जीवन के मदान मे प्रवश करत समय यह सन्देश दिया ह –

'धर्मे ते धीयता बुद्धिमनस्ते महदस्तुच'

'हे स्नातक तुम्हारी बुद्धि धन म नही धम में रमे तुम्हारा मन सकुचित नही विराट हो ।

हार्दिक दृष्टि स मुस्कान वहा होती ह जहा मनुष्य का हृदय विराट् हो उसके विशाल हृदय में सारे विश्व क प्रति स्नह वात्सल्य और प्रेम का प्रवाह छलछला रहा हो, वात्सल्य का अमृत – निझर प्रत्येक प्राणी क प्रति वह रहा हो। जहाँ हार्दिक सकुचितता होती है, वहाँ तेरे मेरे की भावना, स्वाथ – दृष्टि जातपात के भेद, रग–भेद, राष्ट्र–भेद, प्रान्त–भेद, साम्प्रदायिकता की भावना बहुत गहरी होती है और वह उसके अनेक व्यवहारा से झलकती हैं। उसका हृदय दूसरा के दु खा को देख कर पिघलता नही, उसके हृदय मे गुणीजना के प्रति अगर वे उसके सम्प्रदाय, जाति, धम, देश, रग या राष्ट्र के नहीं हा तो कोई स्थान नहीं होता । वह हृदय मानवता के टुकडे कर दता है मानवता के खण्ड - खण्ड करके वह जीता है। ऐसे क्षुद्र हृदय स दान या परोपकार भी नही किया जाता । सावजनिक सेवा के मच पर ऐसा आदमी अव्वल तो आता ही नही, आता है तो भी किसी भय या लाभ के वश आता है। इसलिए हार्दिक मुस्कान

का वहाँ अभाव रहता है। जहाँ हार्दिक मुस्कान होती है, वहाँ मानवता अखण्ड होती है, वह अपने हृदय मे सारी दुनिया की मानव जाति को समा लेता है। कोई पापी, दुर्गुणी, या बुरा आदमी हो तो भी उसके प्रति उसके दिल मे प्रेम की सरिता बहती है। उनका मुस्कानभरा हृदय उसे प्रेम से सुधारने की कोशिश करता है। वह ऐसे पापी, दुर्गुणी या बुरी आदतो वाले व्यक्ति की सेवा करके, अपने को सहिष्णु बनाकर उसे प्रेम से सीधी राह पर ले आता है। आजकल के समाज-नेताओ की तरह किसी की गलती हो जाने पर वह झटपट बहिष्कार का शस्त्र नही अपनाता, उसे सुधरने का मौका देता है, उसे प्रेम से समझाता है, उसके प्रति सहानुभूति बताता है।

वाचिक दृष्टि से मुस्कान वहाँ है, जहाँ वाणी के साथ फूल झडते हो, अमृतमयी मधुर, शिष्ट, सयत और सत्य भाषा बोली जाती हो। मनुष्य के जीवन में बौद्धिक, हार्दिक या मानसिक मुस्कान का दर्पण मिष्ट वाणी है। इसलिए वाणी को खूब सभाल-कर तोल-तोल कर बोलने वाला व्यक्ति वाचिक मुस्कान का धनी हो सकता है। जिसकी वाणी में कर्कशता, हो, कठोरता हो, हिंसोत्तेजक और पापोत्तेजक वाणी जिसके मुख से निकल रही हो, आपस में फूट डालने वाली वाणी निकल रही हो, द्वेष, घृणा और वैर बढाने वाली वाणी मुह से आ रही हो तो वहाँ जीवन की असली मुस्कान नही है। सस्कृतज्ञो ने कहा है—

"वचने का दरिद्रता ?"

"मधुर वचन कहने मे कृपणता क्यो करनी चाहिए ?"
अत वाचिक दृष्टि से मुस्कान भी अत्यन्त आवश्यक है।

कायिक दृष्टि से मुस्कान वहाँ है, जहाँ शरीर से होने वाली प्रत्येक हलचल मे प्रत्येक प्रवृत्ति में विवेक का प्रकाश हो, जहाँ प्रत्येक

व्यवहार, प्रत्येक प्रवृत्ति और प्रत्येक क्रिया निरीक्षण, अनुभव और अध्ययन के आधार पर विशालता की दृष्टि से हो। व्यवहार प्रवृत्ति या काम मनुष्य-जीवन के स्पर्श हैं जिन्हें देख कर मनुष्य की आन्तरिक वृत्ति का पता लगाया जा सकता है। इस लिए जहाँ जीवन के व्यवहार में संकुचितता हो घृणाभाव हो, द्वेष हो, प्रवृत्ति में अविवेक हो क्रिया में स्वार्थ या लाभ हो, भय या क्षोभ हो किसी हाथ, पर, आदि अवयवों से होने वाले किसी कार्य से जनता का अहित होता हो, मानवसंहार होता हो तो वह शारीरिक कार्य जीवन की मुस्कान में अत्यन्त बाधक है। शारीरिक मुस्कान हृदय में दौड़ते हुए रक्त के समान होनी चाहिए। रक्त एक जगह नहीं टिकता, सारे शरीर में सञ्चार करता रहता है, तभी शरीर का स्वास्थ्य ठीक रहता है अगर वह एक जगह बन्द हो जाय तो काला हो जाता है शरीर बिगड़ जाता है जान को भी ले डूबता है। जो रक्त संचार करता है वह लाल होता है। जो लोहा पड़ा रहता है उसके जंग लग जाता है, जिसे रात-दिन काम में लाया जाता है, वह चमकदार होता है। इसी प्रकार जो शरीर हितकर-श्रम करता रहता है परोपकार रत रहता है पर-दुःख-भञ्जक बना रहता है दूसरों को मदद देने के लिए तैयार रहता है रक्त की तरह समाज को अपनी सेवाएँ अर्पित करता रहता है, तो वह शरीर मुस्कान भरा, लालिमा से युक्त रहता है। उसका स्वास्थ्य ठीक बना रहता है। और स्वस्थ शरीर भी शारीरिक मुस्कान की एक निशानी है।

ऐन्द्रियक दृष्टि से मुस्कान वहां है, जहां मनुष्य अपनी प्रत्येक इन्द्रिय का सदुपयोग करना जानता हो सदुपयोग करता हो समाज के हित के लिए उनका उपयोग करता हो, इन्द्रियों से कोई

अयोग्य काम न लेता हो, उन्हें विषयोपभोगों मे बारबार प्रेरित न करता हो, विलासिता की ओर उन्हे न भटकाता हो, अनावश्यक आवश्यकताएँ बढाने के लिए तत्पर न करता हो। जहा मनुष्य इन्द्रियो का गुलाम बन जाता है, वहाँ मनुष्य की बादशाही खत्म हो जाती है, वहाँ मुस्कान कहाँ ? गुलाम को तो हर समय अपने मालिक की सेवा मे तैनात रहना पडता है। उसके दु ख - सुख की चिन्ता ही कौन करता है ? अत ऐन्द्रियक मुस्कान भी जीवन मे महत्वपूर्ण चीज है। पाँचो इन्द्रियो का सदुपयोग भी वही व्यक्ति कर सकता है, जिसकी इन्द्रियाँ स्वस्थ हो, सतुलित हो, सयमित हो। इन्द्रियाँ और शरीर आरोग्य-सम्पन्न होने पर ही धर्म का पालन यथावत् हो सकता है, जो आत्मिक मुस्कान को पैदा करने वाला है।

नैतिक दृष्टि से मुस्कान वहाँ है, जहा जीवन के दैनिक व्यवहार में ईमानदारी, सचाई, शिष्टता, सभ्यता, नियम, मर्यादाओं आदि का यथातथ्य पालन किया जाता हो। जहाँ जीवन मे नीति ही छोड़ दी जाती है, वहाँ धर्म टिकेगा ही कैसे ? नीति तो धर्म की बुनियाद है ! इसलिए नैतिक मुस्कान प्राप्त करने के लिए ऐसी कोई भी प्रवृत्ति न करनी चाहिए, जो अनीति–मूलक हो, जिससे समाज, राज्य, राष्ट्र और धर्म की दृष्टि से मनुष्य अवनति की ओर चला जाय। द्यूतकर्म, मासाहार, चौर्य–कर्म, मद्यपान, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, शिकार, तथा अन्यान्य व्यसन, नशीली या मादक चीजो का सेवन मनुष्य के जीवन को अनीतिमय बना देता है, उसकी नैतिक मुस्कान को फीका कर देता है, अत इन सबसे बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मिक दृष्टि से मुस्कान वहाँ है, जहाँ आत्मा के मूलभूत गुणो सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय अनासक्ति, क्षमा,

दया, संयम आदि को अपनाया जाय और जीवन के प्रत्येक प्रसंग में दृढ़तापूर्वक इनका पालन किया जाय। जहाँ ये गुण नहीं होते हैं और केवल शिष्टता, सभ्यता आदि बाहरी नैतिक गुण होते हैं, वहाँ आत्मा की चमक–दमक नहीं बढ़ती आत्मा की सच्ची मुस्कान मन्द पड़ जाती है। वास्तव में आत्मा तो इन सभी मुस्कानों की जननी है। अगर आत्मा के सद्गुण जीवन में नहीं आए तो जिन्दगी की मुस्कान सर्वांग सम्पूर्ण नहीं होगी।

उपर्युक्त सभी दृष्टियों से मुस्कान जीवन में आने पर ही जिन्दगी की सर्वांग–सम्पूर्ण मुस्कान मनुष्य को प्राप्त होती है। इस विषय में मनुष्य को प्राकृतिक वस्तुओं से अनेक प्रेरणाएँ मिल सकती हैं। प्रातःकाल से पहले खिलती हुई ऊषा, सूर्योदय से पहले मुस्कराता हुआ अरुणोदय आसमान में सर्वत्र उद्धत कर भागने वाला समीर, बालसूर्य की प्रकाश–किरणें एक से एक बढ़कर जीवन की सच्ची मुस्कान को मूल्यवान् प्रेरणाएँ दे रही हैं। कवि के शब्दों में–

उठो नई किरण लिए जगा रही ऊषा,
उठो, उठो नए संदेश दे रही दिशा - दिशा।
खिले कमल अरुण तरुण प्रभात मुस्करा रहा।
गगन विकास का नवीन साज है सजा रहा॥
उठो, चलो, बढ़ो, समीर शंख है बजा रहा।
भविष्य सामने खड़ा प्रशस्त पथ बना रहा॥

—सत्यनारायण लाल

हाँ तो आप अपने को मुस्कान के गुणों से भरिये आपका जीवन मुसका उठेगा। आप उठेंगे तो आपका भाग्य मुस्करा

जीने की कला

भारतवर्ष दर्शन और फिलासफी का देश है। यहा हर वस्तु दर्शन धर्म और शास्त्र की कसौटी पर कसी जाती है फिलासफी और विचारकता की शान पर चढाई जाती है। जो वस्तु कसौटी और शान पर चढान पर खरी उतरे वही यहा स्पृहणीय मानी जाती है ग्राह्य समझी जाती है। भारतीय विचारको न न जीवन के किसी भी क्षेत्र को अछूता नहा छोडा ह उन्होने उसका कोना-कोना छान लिया ह। यही कारण ह कि यहाँ आदिम काल से लेकर आज तक जीवन के सम्बन्ध म विविध महामानवो और विचारकों द्वारा अलग-अलग ढग से साचा गया है।

आदिम काल से ही, जब से मानव-जीवन मे सभ्यता और सस्कृति के चरण-प्रसार होने लगे है कला के विषय म साचा समझा गया है तब स कला मानव-जीवन की अभिन्न सगिनी बन गई है और कला के बिना मानव-जीवन के एक भी कम का प्रवृत्ति या कृति को ठीक नहीं समझा गया है। मानव-जीवन सरस, मधुर और सुन्दर बनाने की चेष्टा जब से मानव जीवन म आई है, तब से कला भी जाने-अनजाने मानव-जीवन के भव्यमन्दिर मे आ पहुँची है।

आदिम युग मे, जब कि मानव अपने जीवन-यापन की विशिष्ट पद्धति से अपरिचित था, सस्कृति और सभ्यता क दर्श —

को नहीं हुए थे, उस समय जीवन के एक महान् कलाकार, युगादि - तीर्थंकर भ ऋषभदेव ने मानव को विविध कलाएँ सिखाई। उस समय पुरुषों के लिए ७२ और स्त्रियों के लिए ६४ कलाएँ उन्होंने प्रचलित की थी।

प्रश्न होता है, मानव की जिन्दगी तो वैसे भी चल सकती है, जिस जीवन का जितना आयुष्य है, उतने समय तक तो वह रहेगा ही, उतने समय तक जिन्दा रहना उसे अनिवार्य है, फिर कला की ऐसी क्या जरूरत थी, जिसके बिना मानव - जीवन चल ही नहीं सकता था ? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हमे मानव-जीवन और कला दोनों पर गहराई से विचार करना होगा।

क्या कोई मनुष्य श्वास लेता है, चलता-फिरता है, जीना चाहता है, अपना या अपने कुटुम्बियों का पेट भर लेता है, बच्चे पैदा कर देता है, एकाध झोंपड़ा रहने के लिए खड़ा कर लेता है, इतने से ही हम उसे मानव - जीवन कह देंगे ? क्या मानव - जीवन का मूल्यांकन हम इसी आधार पर करेंगे ? क्या इन्सान की जिन्दगी के नाप-तौल का दारोमदार इसी पर है ? सचमुच, इन्सान की जिन्दगी के नाप तौल का दारोमदार यह नहीं है कि वह दूसरे प्राणियों की तरह चाहे जैसे भी केवल जिन्दा रहे, या जिन्दा रहने की इच्छा करे। अधजले कंडों की तरह विकारों का, वासनाओं का धुंआ छोड़ते हुए सौ वर्ष तक भी जीता रहे तो उस मानव - जीवन का कोई मूल्य नहीं है। एक नीतिकार ने कहा है :-

"काकोऽपि जीवति चिरं च बलिं च भुड्क्ते।"

"कौआ भी चिरकाल तक जिन्दा रहता है और बलि की जाने वाली चीजों को खाकर पेट भरता रहता है।"

जिन्दगी तो कौआ, कुत्ता, चील, गिद्ध, बिल्लियों के पास भी है, वे भी अपनी जिन्दगी मे उतना ही प्यार करते है, जितना एक मनुष्य करता है पूर्वोक्त कार्यों की समानता भी उनमे पाई जाती है। कौआ कुत्ता आदि पशु पक्षी भी अपनी जिन्दगी चलाने के लिए इधर उधर आहार की खोज मे भटकते रहते हैं, व देखते रहते हैं कि कहाँ झूठन पडी है? चील आकाश मे मडराती रहती है कि कहाँ मुर्दा पडा है? गिद्ध भी मास की तलाश मे मारा-मारा फिरता है। असुरो, दैत्यो और राक्षसो को भी जिन्दगी मिली है पर वे दूसरो की जिन्दगी के साथ खिलवाड करते हुए जिन्दा रहते है, दूसरो के खून पर उनकी जिन्दगी पलती है। ऐसी अधम जिन्दगी का क्या मूल्य है, और पशुपक्षियो की तरह जिन्दगी बिता देने से ही वास्तविक मानव जीवन नही बनता है और न इसे असली मानव जीवन कहा भी जा सकता है।

मानव जीवन क्या है? यह प्रश्न भी भारतीय मनीषियो ने विचारो की शान पर चढा कर परखा है। मानव जीवन की परिभाषा करते हुए एक आचार्य ने कहा—

'किं जीवन? दोष विवर्जित यत्'

सच्चा मानव जीवन क्या है? इसके उत्तर मे उन्होंने खाना-पीना चलना फिरना, जिन्दगी टिकाये रखना श्वास लेना आदि नही कह कर यही कहा कि जो जीवन दोषो से विकारो से रहित होकर जिया जाता है वही वास्तविक मानव जीवन है। उस व्यक्ति का जीवन सच्चा जीवन है जो विकारो से जूझता हुआ जीता है, शेर की तरह निर्भयता पूर्वक गरजता हुआ, अन्याय, अत्याचार, अनाचार और भ्रष्टाचार से सघर्ष करता

हुआ चलता है, जो गजराज की तरह मस्ती मे झूमता हुआ, दुःख, दैन्य, असतोष, कलह, कषाय आदि पापो को परास्त करता हुआ, निश्चितता पूर्वक जीता है।

हाँ, तो जिन्दगी जीने का अर्थ हुआ विकारो मे, वासनाओ से जूझना। एक क्षण भी जीना लेकिन जाज्वल्यमान दीपक की तरह प्रकाश करते हुए जीना, सत्कर्म करते हुए जीना। भारतीय तत्त्वचितको ने कहा है—

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा"

हे अमृतपुत्रो, मानवो, इस विश्व मे तुम्हारा जीवन यो ही बिता देने के लिए, केवल विविधयोनियो मे भटकने के लिए या सिर्फ उदरभरण के लिए ही नही है, तुम सत्यकार्य करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। दुष्कर्मो के लिए एक क्षण भी मत जीओ।

जीवन क्या है, इस सम्बन्ध मे एक जिज्ञासु के प्रश्न का उत्तर देते हुए महात्मा टॉल्स्टाय ने एक कहानी सुनाई— "एक बार एक यात्री अरण्य मार्ग से होकर चला जा रहा था अचानक एक जगली हाथी उसकी ओर झपटा। बचाव का अन्य कोई उपाय न देखकर वह एक रास्ते के कुए मे कूद पडा। कुँए के बीच में ही एक बरगद का पेड था। यात्री उसी की पतली डाल पकड कर लटक गया। कुछ देर बाद उसकी दृष्टि कुँए मे नीचे की ओर गई कि शायद वहाँ रक्षा का कोई उपाय जान पडे। किन्तु वहाँ तो साक्षात् मौत ही खडी थी। एक विकराल मगर मुँह फाडे उसके नीचे गिरने की प्रतीक्षा कर रहा था। यात्री की भयकम्पित निरुपाय आँखे ऊपर की ओर गई तो देखा कि उसी पेड पर शहद के एक छत्ते

म बूंद बून्द मधु टपक रहा था। मधु के मीठे स्वाद के सामने वह भय को भूल गया। उसने टपकते हुए मधु की ओर बढ कर अपना मुँह खोल दिया और तल्लीन होकर बून्द-बूंद मधु का रसास्वादन करने लगा। लेकिन यह क्या? उसने साश्चर्य देखा कि वह जिस डाली के मूल को पकड कर लटका हुआ है उसे एक सफेद और एक काला, ये दो चूहे कुतर रहे थे। यात्री का भय काफी बढ गया।

जिज्ञासु की प्रश्न-सूचक मुद्रा देख महात्मा टाल्स्टाय ने कहा—नहीं समझे तुम? वह हाथी ही काल था, मौत था, मगरमच्छ भी यमराज का सहोदर भाई था मधु जीवन-रस था और वे जो काले और सफेद दो चूहे थे वे दिन और रात थे। इन सब के बीच रहते हुए इन सब के साथ सावधानी पूर्वक संघर्ष करते हुए जीवन बिताना ही मानव जीवन है।

जैन साहित्य में भी इसी प्रकार की रूपकात्मक कहानी मधु बिन्दु के नाम से प्रसिद्ध है तो बौद्ध साहित्य में अवदान' के नाम से। जो हो, मानव जीवन को वास्तविक रूप में जीने के लिए सतत सावधान होकर चलना है।

हाँ तो मैंने पहले कहा था कि मानव-जीवन को वास्तविक रूप में जीने के लिए ही मानव ने कला को अपनाया। कला के बिना जीवन जीवन नहीं है। कला मानव जीवन की उन्नायिका है मानव-जीवन के विकास का एक प्रयोग है जीवन यापन की एक विशिष्ट पद्धति है शैली है। दूसरे शब्दों में कहूं तो मानव-जीवन की एक शुद्धि वृद्धि की एक सुन्दर प्रक्रिया है।

कला की एक निश्चित परिभाषा तो आज तक नहीं बन पाई, फिर भी कला की जीवन में अनिवार्यता के विषय में

किसी के दो मत नहीं। वैसे तो कला का क्षेत्र असीम है, उसे किसी एक व्यक्तिकृत व्याख्या या वस्तु मे सीमित नहीं किया जा सकता। कला शब्द का इन दिनों कुछ ऐसा प्रचार हुआ है कि हर चीज कला बनी हुई है। भोजन बनाना कला, मकान का नक्शा बनाना भी कला। जूतियो की मखमल पर कसीदा निकालना भी कला, बूट पर पॉलिश करना भी कला, पीतल के बर्तनो पर नक्काशी करना भी कला, अखबार मे कहानी के चित्र बनाना भी कला, दैनिक पत्र मे व्यग्य चित्र बनाना भी कला, लेख के शीर्षक लिखना और लेख लिखना भी कला, चित्र बनाना भी कला, कोई भी काम किसी को पसन्द आजाय, जिसमे कुछ भी स्वार्थ साधन, अर्थोपार्जन या मनोरञ्जन हो वह चीज आज कला शब्द से व्यवहृत होने लगी है। यहा तक कि चोरी करना भी जेब काटना भी कला है, काला बाजार करना भी कला और शोषण के नये नये ढग अपनाना, विज्ञापन द्वारा अपनी चीज अधिक खपाना और बढा चढा कर तारीफ करना भी कला हो गई है। और तो और गाना तो कला था ही, हँसना, रोना और सोना आदि भी कला हो गई है। मतलब यह कि भाषा में जितने भी क्रियापद है, उन सबके पीछे कला का पुछल्ला लग गया है, जिसमे सामान्य आदमी घपले मे पड जाता है कि वास्तव मे कला क्या वस्तु है? पश्चिमी कला मर्मज्ञो ने यूनानी सभ्यता के विकासकाल से लेकर अब तक 'कला की परख' पर बहुत कुछ लिखा है। यूनानी आचार्य अफलातू और उनके शिष्य अरस्तू से लेकर आधुनिक काल के कैंट, शेलिग, हेगेल, शोपेनहार, वाल्टेयर, हर्बर्टस्पेंसर और जॉनरस्किन कला के विभिन्न व्याख्याकारो मे से हुए है। अपने सर्वोत्कृष्ट उपन्यास 'ज्याँ क्रिस्टोफीन' की भूमिका मे रोम्याँ रोला' ने जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को उपस्थित

खोद कर सुन्दर सुरूप मूर्ति वना देता है, जिसमे कलाकार के भावो का सजीव चित्रण हो जाता है। एक सगीतकार अपने ताल, लय और कण्ठ से वीणा पर ऐसा वजाता है कि उसकी आन्तरिक रसानुभूति हृद्य और अनवद्य रूप से उपस्थित हो जाती है। एक कुम्भकार मिट्टी के वदसूरत लौंदे को लेकर अपनी हृदयस्थ कल्पना के अनुसार उसे घट, कुम्भ, कुञ्जा, प्याला आदि मे से किसी एक का रूप दे देता है। कला एक ओर जहाँ सुन्दर को सुन्दरतम ढग से उपस्थित करती है, वहाँ असुन्दर को भी ऐसा रूप देती है जिससे कि वह भी उपेक्षणीय नहीं रह जाता।

इन सब परिभाषाओ पर चिन्तन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि कला मानव जीवन के अन्तःस्थ सौन्दर्य, आत्मिक सौन्दर्य, सामाजिक सत्य और शिव की भली भाति अभिव्यक्ति का नाम है, फिर वह चाहे भिन्न-भिन्न वस्तुओ या क्रियाओ को लेकर प्रगट होती हो।

कला का उद्देश्य मानव जीवन को विकृत बनाना नही है और न प्रकृत ही रखना है, अपितु सस्कृत बनाना है। भोग विलास के उपकरणो और प्रसाधनो के अर्थ में कला शब्द का प्रयोग करना कला की मखौल उडाना है। यह कला की विकृति है, कलाभास है, वास्तविक कला नही। आज कल सिनेमा के इश्तिहारो के चित्रकार विलासभवनो मे नग्न मूर्तियो के निर्माता मूर्तिकार, धनिको को रिझाने के लिए नाचने वाली वेश्याएँ, रेडियो और सिनेमा स्टुडियो मे पैसे-पैसे के लिए गाने का अभिनय करने वाले सगीतज्ञ और कुछ गदी राजनीति रानी के दलाल कवि कला के व्यभिचारी है। ऐसे अनधिकारी हाथो मे पड कर कला की वदनामी काफी हुई है। कला चद चादी के टुकडो मे बेची नही

मर जाता है, वहाँ किसी भी सत्य का आविर्भाव नहीं होता है।
इसलिए मे तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि कला का आविर्भाव
जब आत्मा मे या अन्तर से होता है तो उसका उपयोग सत्य के
लिए, किसी सिद्धान्त के लिए ध्येय के लिए या कल्याण के लिए
होना चाहिए, कला मे बाह्य सौन्दर्य मुख्य वस्तु नही है, जहाँ
सत्य और शिव (कल्याण) होता है, वहाँ सौन्दर्य-आन्तरिक
सौन्दर्य तो आ ही जाता है।

एक नारी सौन्दर्य प्रसाधन के लिए कला का उपयोग करती
है, वह बाह्य रूप से बहुत खूबसूरत लगती है, किन्तु अगर उसमे
आन्तरिक सौन्दर्य नही है, वह अपने सम्पर्क मे आने वालो के
साथ मानवता का, सहानुभूति का व्यवहार नही करती है, अपने
बच्चो और घरवालो पर क्रोध बरसाती है, अपने अभिमान मे
आकर दूसरो को कुछ नही समझती है, तो वह उसकी कला
का दुरुपयोग है, उसकी यह कला सत्य के लिए नही है, उस कला
मे शिवत्व नही है, वह कला वास्तविक कला नही कलाभास है।

भारतीय सस्कृति के महामनीषी भर्तृहरि ने इसी बात को
द्योतित करने के लिए कहा है—

"साहित्य--सगीत--कला विहीन
साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीन।"

जिस जीवन मे साहित्य की साधना- हितकर सत्य प्रधान
साधना नही है, सगीत की उपासना नही—यानी शिवत्व की निष्ठा
नही और कला की आराधना नही, वह जीवन पशु का जीवन
है, वह मानव का जीवन नही, भले ही मानव कृति मे वह
मनुष्य हो, किन्तु है वह पूछ और सीग से रहित पशु तुल्य
मानव ही।

हा, तो मानव जीवन म जब सत्य शिव और सुदर को लेकर कला आती है तब वह मानव को पशुत्त्व से ऊपर उठा कर मानवत्त्व की कोटि में ले जाती है । कला का कार्य मानव को पशुत्त्व से ऊपर उठा कर क्रमश मानवत्त्व, देवत्त्व और अन्त मे भगवत्त्व की प्राप्ति करान तक परिसमाप्त होता है । उदाहरण के लिए मिट्टी अपने-आप में कोई आकर्षक नही होती, किन्तु उसी मिट्टी को लेकर मानव जाति की सेवा के लिए कम से कम खर्च म और अल्प समय में कुम्भकार अपने कुशल हाथो से कला द्वारा घडे का रूप द देता है तो वह मिट्टी ग्राह्य हो जाती है । इसी प्रकार आटा और पानी वही होता है, किन्तु जिस बहिन के हाथो म रोटी बनाने की सुदर कला होती है, और वह उस रोटी बनान की कला का प्रयोग एक सत्य क लिए कुटुम्बी मानवो के हित के लिए करती है तो उसकी वह रोटी बनाने की कला प्रशसनीय होती है । लेकिन एक फूहड स्त्री आटा और पानी उचित मात्रा में न लेकर न्यूनाधिक ले लेती है केवल बेगार के लिए जसे तसे जली, कच्ची रोटियाँ सेक देती है तो वह कला नहीं है, उसमें सत्य नही शिव भी नही और सौदर्य तो आता ही कैसे ? जिस चीज में केवल सुन्दरता को देख कर कला का अनुमान कर लिया जाता है, वहाँ कला के नाम से धोखा है । किंपाक फल को बनाने में प्रकृति ने बहुत योगदान दिया है उसमें सुदरता भी भरी है और सुगध भी, किन्तु वह मनोरम फल भी सत्य क लिए नहा प्राणनाश के लिए होता है । इसी प्रकार जीवन की हर क्रिया क विषय म समझना चाहिए और सत्य और शिव की कसौटी पर उसे परख कर ही कला का अनुमान लगाना चाहिए। एक कहानीकार कहानी को बहुत सुदर ढग से चित्रित करता है,

कहानी का प्लॉट भी उसने वहुत वढिया लिया है, वह कहानी लोक रञ्जक भी है, किन्तु उस कहानी से मानव जीवन अगर विलासिता की ओर जाता हो, अगर उम कहानी को पढ़ कर मानव जीवन पतित होता हो तो, कहना चाहिए उसमे 'सत्य नही है, शिव नहीं है, केवल 'सुन्दर' है। इसी प्रकार कोई भी काव्य, नाटक, उपन्यास, चल-चित्र, चित्र, मगीत, वाद्य, मूर्ति निर्माण, या अन्य किसी भी वस्तु का निर्माण सत्य और शिव की दृष्टि से हो और उसमे सौन्दर्य कम हो तो भी उसे हम कला कह सकते है, किन्तु जहाँ केवल 'सुन्दर' को लेकर ही कोई कृति की गई हो, उससे लोक हित न सधता हो, मानव जीवन को पतन की ओर, विकृति की ओर जाने की प्रेरणा मिलती हो, मानव जीवन को पशुत्त्व या असुरत्त्व की ओर वढाने मे यह सहायक हो वहाँ वास्तविक कला नही है। पेट के चक्कर मे पडा हुआ मनुष्य मानव समाज के अहित के लिए किसी भी वस्तु को वनाने या विकृतकला का प्रदर्शन करने के लिए प्रवृत्त हो सकता है, लेकिन वह वास्तविक कलाकार का पद नही पा सकता।

यही कारण है कि युगादि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने उस युग की मानवजाति को जो भी कलाएँ सिखाई, वे पशुत्त्व से मानवत्त्व की ओर वढने के लिए ही सिखाई थी। उन्होने उन कलाओ का प्रयोग सत्य के लिए, शिवत्त्व के लिए मानव जाति को वताया था। जम्बू द्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र इस वात का साक्षी है। वहाँ वताया है—

'पयाहियाए उवदिसइ'

भ ऋषभदेव ने प्रजा के हित के लिए, सत्य और शिव के लिए कलाओ का उपदेश दिया था, कलाएँ सिखाई थी। उन्होने

जो भी कलाएं या विद्याएं सिखाई, उसके पीछे मानवता लाने का संकेत छिपा था उसके पीछे मनुष्यों में पारस्परिक सहयोग और सेवा-भावनाओं की प्रेरणाएँ अन्तर्हित थी। उन कलाओं में जीवन का महान् सत्य गर्भित था। इसीलिए उन्होंने उस युग की मानव जाति को कलाएं सिखा कर उनका उद्देश्य भी साथ साथ बता दिया। फलितार्थ यह निकला कि कला का जो रूप सत्य के लिए, सेवा के लिए किसी सिद्धान्त या ध्येय के लिए हमारे सामने मंगल मय बनकर आता है वही कला जीवन में आनन्ददायिनी है, वास्तविक सुन्दरता से ओतप्रोत है। कला का जो रूप मानव की राक्षसी वृत्तियों का उपशमन नहीं कर सकता मानव के क्षुद्र द्वैतभाव और अहं को नष्ट नहीं कर सकता विश्व की समरसता को परखने की दिव्य दृष्टि नहीं दे सकता अपितु जीवन में कहीं भी विकृति-कुरूपता को उत्पन्न करता है वह कला नहीं कला की प्रेत छाया हो सकती है। इसलिए कला परीक्षा का सबसे सुन्दर मापकयन्त्र उसके द्वारा उत्पन्न होने वाली सत्प्रभाव की परम्परा, जीवन हित का प्रकटीकरण है।

हां तो, अब आप भलीभांति समझ गये होंगे कि 'जीवन और कला' क्या है ? दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा है ? कब कला असली कला कहलाती है और कब कला की विकृति ? कला का लक्ष्य, उद्देश्य या प्रयोजन क्या होना चाहिए! मैं समझता हूँ, इतना समझ लेने के बाद मानव जीवन जीने की कला को भी आप सरलता से समझ सकेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति जिन्दा रहना चाहता है पर जिन्दा रहना भी तो एक कला है। जिंदा रहने का मतलब किसी भी तरह से, येनकेन प्रकारेण, गलत-सलत ढंग से अपना अस्तित्व बनाए

रखना ही नही है। अस्तित्व तो पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े कुत्ते-बिल्ली सभी बनाए रखना चाहते है, शेर, चीता, भालू आदि क्रूर जानवर भी तो अपने आपका अस्तित्व बनाए रखना चाहते है अगर आप मनुष्य के रूप मे अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहते है तो आपको जीने की कला जाननी होगी। जीने को तो सारी दुनिया जीती है, पर जीने की कला को विरले ही जान पाते है। जिसे अच्छी तरह से जीना आगया, वह अपनी जिन्दगी को भी आराम से, सुख शाति से बिताता है और दूसरो के लिए भी अपने प्रभा-पूर्ण जीवन का नमूना छोड जाता है। अगर किसी के पैर मे काटा लग जाता है, या आँख मे रजकरण पड जाता है, तो उसे असह्य हो जाता है, पहने हुए कपडो मे या दात मे कोई फास चुभ जाय तो वह भी सहन नहीं होती है, इसी प्रकार प्रत्येक मानव को अपना कला विहीन जीवन सह्य नही होना चाहिए। जो जीने की कला जान लेता है, वह व्यक्ति अपने जीवन की प्रत्येक छोटी से छोटी प्रवृत्ति करते समय सावधानी रखता है, वह अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति, क्रिया या हलचल सत्य के लिए, जगत् के हित के लिए, सेवा के लिए और मगल के लिए करता है। वह दूसरो के जीवन का ध्यान रखते हुए, दूसरो को जिलाते हुए जीता है, वह ऐसा कोई भी कार्य नही करता, जिससे दूसरो का अहित होता हो, दूसरे दु.ख मे पड़ते हो।

वैसे तो चलना सभी जानते है, वचपन से ही चलना आ जाता है, उसके लिए कहीं ट्रेनिंग नही लेनी पडती, इसी तरह खाना पीना, उठना वैठना, सोना जागना, बोलना लिखना आदि प्रत्येक क्रिया प्रत्येक मनुष्य कर सकता है, करता भी है। खाने पीने आदि की क्रिया तो पशु पक्षी आदि भी करते है

किन्तु नीत की कला जानत वाल व्यक्तिया ग्रौर न जानने वाले व्यक्तिया की पूर्वोक्त क्रियाग्रा म बहुत ग्रन्तर है ।

एक ग्रादमी जीने के लिए खाता है तो दूसरा खाने क लिए ही जिन्दा रहता है एक सर्दी गर्मी से बचन ग्रौर लज्जा निवारण क लिए कपडे पहनता है, दूसरा मौज शौक ग्रौर फैशन के लिए कपडे पहनता है, एक व्यक्ति धर्म कमाने प्रतिष्ठा बढाने ग्रौर स्वार्थसिद्धि करने के लिए ग्रच्छा बोलता है या लिखता है, किन्तु दूसरा व्यक्ति जगत् के, समाज के व ग्रपने हित के लिए नि स्वार्थ भाव स, निष्काम भाव स बोलता है सत्य बोलता है या लिखता है, एक चलता है दूसरा को सताने क लिए दूसरा को मारने पीटने दूसरा पर जोर ग्रजमा कर लूटने खसोटने, ग्रन्याय ग्रनीति करने या ग्रत्याचार करने के लिए ग्रौर दूसरा चलता है, ग्रपनी न्यायोपार्जित जीविका क लिए जगत के हित के लिए सेवा क लिए ग्रात्म साधना क लिए एक जागता है दूसरा को तग करने के लिए पापाचार करन के लिए जगत् मे मारकाट मचाने के लिए जगत् का ग्रहित करन के लिए किन्तु दूसरा जागता है कर्त्तव्य पालन के लिए जगत् की कल्याण चिन्तन करने क लिए हित साधन करने के लिए, इसी तरह सोना उठना ग्रादि सभी क्रियाए एक व्यक्ति की बुरे उद्देश्य स होती हैं दूसरे व्यक्ति की होती है ग्रच्छे उद्देश्य स। क्या इन दोना प्रकार क व्यक्तिया की क्रियाग्रा में प्रवृत्तियो म ग्रन्तर नही है ? जब ग्रन्तर है तो हमें कहना चाहिए जीने की कला जानने वाला व्यक्ति प्रत्येक क्रिया को विवेक पूर्वक, शुभ उद्देश्य-पूर्वक भली भाति हृदय उडेल कर कम स कम खर्च में, कम स कम समय में करेगा जब कि जीवन-कला स ग्रनभिज्ञ उन्हीं क्रियाग्रा

को बुरे उद्देश्य से, गलत ढग से, अनमना होकर, अधिक खर्च और अधिक समय मे करेगा। यही कारण है कि जीवन के महाकलाकार भ० महावीर से किसी साधक ने जीने की कला के बारे में पूछा—

"कह चरे, कह चिट्ठे, कहमासे, कह सए ?
कह भुजतो भासतो, पावकम्मं न बधई ?"

"हे भगवन्! कलामय जीवन बिताने वाले को कैसी चर्या करना चाहिए या कैसे चलना चाहिए, कैसे बैठना चाहिए, कैसे खड़ा होना चाहिए, कैसे सोना चाहिए, कैसे खाना चाहिए और कैसे बोलना चाहिए, जिससे कि उसकी जीने की कला मे बाधक पापकर्म न बन्ध सके ?"

भ० महावीर ने नपे तुले मर्मस्पर्शी शब्दो मे उसका उत्तर इस प्रकार दिया—

"जय चरे, जय चिट्ठे, जयमासे, जय सए।
जय भुजतो भासतो पावकम्म न बधइ॥

हे जीवनकला के साधक, तुम्हे यतना—सावधानी या विवेक पूर्वक चलना चाहिए, यत्न पूर्वक खड़ा होना, बैठना, सोना, खाना या बोलना चाहिए, जिससे कि जीने की कला मे बाधक पापकर्म न हो सके।

यह है जीने की कला का दर्शन ! अगर मनुष्य इसी प्रकार जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति से पहले अपना विवेकमय चिन्तन रखे, अपनी सत्य, शिव, सुन्दर की क्षेममयी भावना रखे तो उसका जीवन कलामय होते देर न लगे।

कर्मयोगी श्री कृष्ण से अर्जुन जैसे जिज्ञासु ने भी इसी भांति जीवन कला के मर्मज्ञ स्थितप्रज्ञ की चर्या के बारे मे पूछा है—

" स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य, केशव !
स्थितधी किं प्रभाषेत, किमासीत व्रजेत किम ? "

हे जीवन कला कोविद श्रीकृष्ण! जीवनकला मर्मज्ञ स्थितप्रज्ञ की क्या परिभाषा है, उस समाधिस्थ की पहिचान क्या है ? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है कैसे बैठता है कैसे चलता है ?

और इसका मर्मस्पर्शी उत्तर श्रीकृष्ण ने अपनी कमनीय वाणी में लगभग १८ श्लोकों में विस्तार से दिया है। सचमुच जीवन कला मर्मज्ञ बनने के लिए उन सब श्लोकों पर विवेक पूर्वक चिन्तन मनन करने और तदनुसार जीवनचर्या रखने से जीने की कला हस्तगत होजाती है।

जीने की कला का मर्मज्ञ जब जीवन की किसी भी क्रिया को करेगा तो वह अपने आसपास की दुनिया को भी देखेगा, वह यह सोचेगा कि मेरी इस प्रवृत्ति से क्रियाएँ या हरकत से किसी भी प्राणी को दुख तो नहीं होगा, किसी का अहित तो न होगा किसी की जिन्दगी कुचली तो नहीं जायगी ?

एक मोटर ड्राइवर है, वह वाहन हांककर मोटर चला रहा है अपने दायें बायें, आगे-पीछे चलने वाले व्यक्तियों को भी देखता है वस्तुओं को भी देखता है और बड़ी सावधानी से मोटर चला रहा है कोई भी व्यक्ति कुचल न जाय मोटर को भी किसी वस्तु से टक्कर लगकर चोट न पहुँचे, इस आशय से जहाँ खतरा देखता है ब्रेक लगाकर मोटर रोक लेता है जहां किसी भी व्यक्ति को मोटर के आगे चलता देखता है तो फौरन हॉर्न बजाकर उसे सावधान कर देता है ताकि वह मोटर की चपेट में न आजाय। इस

ड्राइवर सही सलामत अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है, उसे भी आनन्द होता है और मोटर के मालिक को भी।

यह एक रूपक है अपने आप मे। और इसी प्रकार हमारी जिन्दगी भी एक गाडी है, जो केवल गैरेज मे रख देने के लिए ही नही है, उसे आवश्यक हरकत तो, करनी ही पडती है, अनिवार्य प्रवृत्तिया किये बिना कोई चारा नही है। जीवन रूपी गाडी के ड्राईवर हम है। अगर हम अपनी जीवन रूपी गाडी चलाते समय बाहोश होकर चलाते है अपने दाये बाये, आस पास आगे पीछे आने वाले जीवनो को भी देखते है, उनकी जिन्दगियो को कुचलते नही है, उनकी जिन्दगियाँ हमारे मार्ग में आती हैं तो उन्हे बचाने का प्रयत्न करते है वाणी या लेखन रूपी हार्न बजाकर उन्हे सावधान करते है, उनको हमारी जीवन गाडी की झपट से बचाने के लिए कभी ब्रेक भी लगा देते हैं, ताकि एक्सीडेंट न हो जाय। इस प्रकार सावधानी पूर्वक जीवन गाडी चलाने वाला कुशल चालाक अपने गन्तव्य स्थान पर सही सलामत पहुँच जाता है और साथ ही अपने परिवार, समाज या जातिवालो को भी ले जाता है।

किन्तु एक ड्राइवर ऐसा है, जिसने नशा कर लिया है, और नशे मे वह बेहोश होकर मोटर चलाता है, दाये बाये चलते हुए आदमियो को देखता नहीं, अधाधुन्ध मोटर चला रहा है, उसे कोई फिक्र नहीं है कि कोई मोटर की झपेट मे आकर कुचला जायगा, या दुर्घटना होजायगी। उसे परवाह नही है, दूसरो की जिन्दगियो की और इस प्रकार किसी न किसी एक्सीडेंट का शिकार होकर वह गन्तव्य स्थान पर पहुंचने का प्रयत्न करता है, किन्तु ऐसे ड्राईवर को बीच मे ही पकड़ लिया

जायगा, उसका लाईसेंस जब्त हो जायगा, जुर्माना होगा सो अलग। वह अब जिंदगी भर मोटर चलाने का अधिकार नही पा सकेगा।

इसी प्रकार जीवन कला के अनभिज्ञ और अज्ञानी मनुष्य को जब मानव जीवन की गाडी मिल जाती है तो वह दूसरो की जिन्दगीयो को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ, कुचलता हुआ, दुर्घटनाओ का शिकार होता हुआ अपनी जीवन गाडी को भी खराब करता हुआ गतव्य स्थान पर पहुँचने की कोशिश करता है। मोहमाया की शराब के नशे मे चूर होकर वह दूसरो की जिन्दगियो को कुछ भी नही गिनता है ऐसे व्यक्ति को पापकर्म रूपी सिपाही पकड लेता है उसका मानव जीवन रूपी गाडी चलाने का लाइसेंस (अधिकार) छीन लिया जाता है, यानी उसे आयन्दा कई जन्मो तक मनुष्य जीवन नही मिलता और पापकर्म के दुष्फल रूपी सजा उसे मिल ही जाती है। इस प्रकार वह अपने गन्तव्य ध्येय तक पहुच नही सकता।

हां तो जीने की कला का मर्मज्ञ और जीने की कला से अपरिचित की जीवनचर्या मे कितना अतर होता है यह पूर्वोक्त रूपक के द्वारा भलीभाति साफ होगया है। जीने की कला में बाह्य सौन्दर्य का स्थान गौण है, यहा तो आतरिक सौन्दर्य की ही चर्चा होती है, सत्य और शिव ये दो उसके फेफडे हैं जिनके द्वारा वह श्वास लेती है। जहाँ जीवन में सत्य और शिव नहीं वहाँ कोरी कला प्राणविहीन कलेवर के समान है।

एक राजा के वैभव की चर्चा देश विदेश मे जन-जन की जिह्वा पर थी। एक दिन एक प्रसिद्ध महात्मा भिक्षाटन करते हुए राजमहल म आ निकले। राजा ने उन्हें भक्तिभाव से आहार दिया। महात्मा राजकुल के व्यक्तियो को धर्मोपदेश देकर जब जाने लगे तो राजा ने निवेदन किया कि राजकाप क

रत्नसचय को तो एक बार देखलें, क्योकि साधुओ के आशीर्वाद से ही वे ऐसा कोष बना सके है। महात्मा वह रत्नभण्डार देखकर चकित भी हुए, चिन्तित भी। महात्मा ने राजा से पूछा–"राजन्! सबसे बडा और सबसे अधिक मूल्यवान, पाषाण इनमे से कौन सा है, बतलाइये तो?" राजा ने एक मुट्ठी भर का जाज्वल्यमान हीरा दिखाया। महात्मा किञ्चित् मुस्कराए और बोले–"महाराज, मैने इससे भी बडे और इससे भी अधिक मूल्यवान पाषाण आपके राज्य मे देखे है। आपको उनका पता ही नही।" राजा लालायित हो कर उन्हे देखने के लिए चले। राजा आवेश से भ्रमित और दर्शन विनोद से चकित थे। जब महात्मा ने एक जीर्णकाय मलिनवसना बुढिया की झोंपडी में जाकर उसकी चक्की के दो पाटो को दिखलाकर कहा–"आपके राज्य मे बहुमूल्य पाषण ये है। प्रजा से कहे कि इन रत्नो का प्रति दिन दर्शन करें।" राजा मौन खडे रह गये। क्या समझे और क्या कहे? इसी पेशोपेश मे था कि महात्मा वाणी मे मधुरता भर कर बोले–"राजन्! इस निःसहाय बुढिया की जीविका का एक मात्र साधन ये चक्की के पाट है जिनके सहारे यह दूसरो का आटा पीसती है और अपने प्राणो की रक्षा करती है। आपके हीरे पन्ने क्या किसीके प्राण बचाते हैं? उनसे कुछ आय होती है या उनकी रक्षा पर उलटा व्यय होता है? पत्थर वे भी, किन्तु मूल्यवान्, वह जो उपयोग में आए, जिससे किसी का हित हो। कोरा-सौन्दर्य, कोरी शान, किस काम की? राजा की विवेक दृष्टि जागृत हो गई।

हाँ, तो केवल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही जहाँ हो, सत्य और शिवत्व न हो, सेवाभावना और सिद्धान्त रक्षा का

प्रश्न गौण हो, वह जीवन बाह्य सौंदय से युक्त होते हुए भी कलामय नही माना जा सकता। कलामय जीवन वही है, जहाँ सत्य शिव मुख्य हो जनहित और सिद्धात रक्षा का प्रश्न सामने चमक रहा हो, भले ही वह शरीर कुरुप हो बदनाम हो।

राजा जनक की राज सभा में अष्टावक्र अपने मातामह को मुक्त कराने और राजा के गूढ प्रश्न का उत्तर देने के लिए पहुचे। वे ज्यो ही सभा मे प्रविष्ट हुए उन्हें देखकर समस्त विद्वान् हँसने लगे, क्योकि अष्टावक्र कुरुप थे, बेडौल थे, आठ जगह से बाके थे। तपस्वी अष्टावक्र भी हसने लगे। विद्वानो ने पूछा—'आप क्या हसे ? उन्होने मुस्कराकर जवाब दिया 'मै अपनी भूल पर हसा हू। मैं समझता था कि राजा जनक की सभा मे बडे-बडे अध्यात्मवादी विद्वान् होगे पर यहाँ आकर मुझे अपनी समझ भूलभरी दिखाई दी क्योकि मैने देखा कि यहाँ तो चमडे का रूपरग देखा-परखा जाता है मानो चमकारो की सभा हो, आत्मा का सौन्दर्य नही देखा जाता। जीवन की कला का मापदण्ड आपके यहाँ केवल बाह्य सौन्दर्य मे लिया जाता है।'

सचमुच अष्टावक्रमुनि की वाणी मे भारतीय सस्कृति—की आत्मा बोल रही थी वे जीवन की कला के वास्तविक पारखी थे। जीवन मे आन्तरिक सौन्दर्य का उपयोग वे योग मे करते थे भोग मे नहीं।

जीने की कला से अनभिज्ञ मनुष्य के जीवन मे भोग होता है योग नहीं, स्वार्थ होता है सयम नहीं। उसका जीवन नीरस होता है सरस नहीं, उसके जीवन मे मौजशौक की वृत्ति होती

है, सच्चा आनन्द नहीं। एक उदाहरण मे यह बात स्पष्ट हो जायगी –

मिष्टर पिटरसन नामक एक विद्वान् लिखता है कि मुझे कुछ महीनो पहले एक ऐसा आदमी मिला, जो उम्र मे ४० वर्ष का था, पर चेहरे से लगता था ६० वर्ष का। क्योकि वह जीवन की मौजशोक लूटने, भोग का आस्वादन करने के लिए बेचैन हो उठा था। दुनिया मे कोई भी वस्तु उसे रस देने वाली नहीं रह गई थी। उसने अपने जीवन मे सभी वस्तुओ का रस चूसा था, पर बदले में कुछ दिया नही था। सयम तो उसमे नाम मात्र को नहीं था। वह विद्वान् था, व्यापारी भी था। उसने अनेक देशो का भ्रमण भी किया था। अनेक घाटो का पानी भी पिया था। पर ४० वर्ष की उम्र मे वह ऐसी स्थिति पर पहुँच गया था कि अब उसे अपने जीवन मे जरा भी रस नही रहा था। उसकी जिन्दगी कडवी, रूखी और विषम बन गई थी। कुदरत से उसे अच्छा शरीर मिला था, परन्तु उसने उनकी सारसभाल न करके इतनी लापरवाही मे अपना जीवन विताया कि ४० वर्ष की उम्र मे उसके बाल चाँदी से सफेद हो गए थे। वृद्धावस्था के सभी चिह्न उस के शरीर पर दृष्टि गोचर हो रहे थे। उसने अध्ययन और देशाटन से जो ज्ञान हासिल किया था, वह उसके जीवन मे उपयोगी न हो सका। उसका मन अपने स्वार्थो की दुनिया मे इतना तल्लीन हो गया था कि कौनसी वस्तु उसने खाई ? कोनसा मादक पेय पिया ? कितने घटे सोया ? क्लब में कौनसा खेल खेला ? इसके सिवाय कोई भी विचार उसके मन मे नही घुस सकता था। उसकी दुनिया का केन्द्रबिन्दु वह खुद ही बन गया था। इस प्रकार उसने अपनी अमूल्य जिन्दगी को कलामय ढग से न विता कर बर्बाद कर दिया।

जीन की कला जिसमें होगी, वह बढ़िया चमकीले कपड़े गहने भोजन और पदार्थों को महत्त्व नहीं देगा वह उनमें से सादगी सात्त्विकता, ब्रह्मचर्य पोषणता आदि तत्त्वों की दृष्टि से एसी ही चीजों का उपयोग इस ढंग से करेगा कि दुनिया की कोई भी वस्तु बर्बाद न हो प्रकृति की दी हुई इन्द्रियां शरीर और अन्य अवयव विकृत न बनें।

बंगाल के महान दार्शनिक सतीशचन्द्र विद्याभूषण की प्रशंसा सुनकर उनकी माता के दर्शन करने के लिए बहुत दूर से एक व्यक्ति आया। उसका विचार था कि जिस माता की वात्सल्यमयी गोद में पल कर विद्याभूषण का जीवन इतना कलामय बना है उस रत्नकुक्षधारिणी जननी के दर्शन कर अपने नयनों को पवित्र करूं। किन्तु ज्यों ही उसने सीधेसादे वस्त्रों में तथा हाथों में पीतल के कड़ों से युक्त विद्याभूषण की मां को देखा त्यों ही वह भावविभोर हो गया। उसके मस्तिष्क में अनेक कल्पनाएँ उत्पन्न होने लगीं कि क्या ऐसा महान दार्शनिक अपनी माता की इतनी उपेक्षा कर सकता है? क्या ये मोटे वस्त्र और पीतल के कड़े माता के अनादर की मुंह बोलती कहानी नहीं है? किन्तु वार्तालाप करने से उसे अपनी धारणा मिथ्या प्रतीत हुई मां और पुत्र में अगाध स्नेह के दर्शन हुए। तथापि आगन्तुक ने अपने मन के अविश्वास को दूर करने के लिए अत्यन्त नम्रता से पूछा—'माताजी आपके शरीर पर साधारण वस्त्र और पीतल के कड़े देख मुझे आश्चर्य हो रहा है कि क्या यह आपके लिए बंगाल के लिए और सतीश बाबू के लिए लज्जा की बात नहीं है?' सतीश बाबू की मां बोल उठी—भैया तुम्हारा यह समझना भूल भरा है। हीरे पन्ने, माणक, मोती के आभूषणों से आवेष्टित हो कर जन मन में ईर्ष्या की भावना भड़काने से मैं अपना और

वगाल व सतीश का गौरव अनुभव नहीं करती । मनुष्य की
मुन्दरता वस्त्रालकारो मे नहीं है, अपितु त्याग मे है, उदारता मे,
मात्त्विकता मे है, कलामय जीवन विताने मे है। तुम्हें यह जानकर
प्रमन्नता होनी चाहिये कि अभी कुछ समय पूर्व वगाल के दुष्काल
ने जन-जीवन मे एक विपमता पैदा करदी थी, मानव अन्न के
दाने दाने के लिये तरस रहा था, छटपटा रहा था, उस ममय
जो मतीश ने उदारता दिखलाई, और मने अपने हाथो मे जो
गरीब जनता की महायता की, वही मेरा असली गौरव है और
मै समभती हूँ कि मतीश और वगाल का गौरव भी उमी मे
मन्निहित है। वस्त्रालकारो मे मुमज्जित हो कर वैभव का प्रदर्शन
करने मे नहीं, कलाविहीन जीवन विताने मे नहीं । सादगी और
सयम से जीवन विताना ही तो मच्चे दार्शनिक और कलाकार
का लक्षण है ?"

यह है जीने की कला का रहस्य । जहाँ जीने की कला
होती है, वहाँ भोग पर नियत्रण लग जाता है, सयम और विवेक
के पवित्र तटो के वीच मे मे होकर जीवनमरिता वहने लगती है,
वहाँ नियमितता, व्यवस्थितता और उपयोगिता की त्रिवेणी मे स्नान
करने से जीवन पवित्र वन जाता है, आनन्दमय और स्फूर्तिमय
वन जाता है ।

जीवन के महान् कलाकार भ० महावीर ने गृहस्थो के लिए
तो इम प्रकार का एक व्रत ही वता दिया है, जिसके द्वारा
गृहस्थ जीवन मुनियन्त्रित, सयमित और मर्यादित हो कर कलामय
वन जाता है । उसका नाम है—'उपभोग परिभोग परिमाण व्रत'।
इस व्रत मे जीने की किसी आवश्यक वस्तु के उपयोग से इन्कार
नहीं किया गया है, प्रतिवन्ध नहीं लगाया गया है, अपितु मर्यादा
मे रह कर, विवेक दृष्टि पूर्वकग उपयो करना वताया गया है।

मतलब यह कि उपभोग करने की नहा उपयोग करने की बात बताई गई है। उपभोग जब नियंत्रित, संयमित और मर्यादित होजाता है विवेकबुद्धि से निर्णीत होजाता है, तब वह उपयोग बन जाता है और उपयोग ही अनगार मुनियों के लिए—योग ही जीने की कला का प्रधान अंग है मुख्य लक्षण है। जनशास्त्रकारों ने जीवन जीने वालों का मुख्य लक्षण 'उपयोग' बताया है—उवओगो जीवस्स लक्खणं उपयोग जीव का लक्षण है उपभोग नहीं। जहा उपयोग होता है, वहा विवेक बुद्धि से जीवन जीने में साधक—बाधक तत्त्वों का निर्णय करना पड़ता है विवेक का गज लेकर, अपनी शक्ति और क्षमता के अनुसार वस्तुओं का उपयोग करने की मर्यादा बना लेनी पड़ती है, अपनी जीविका भी इसी संयम सादगी व अल्पारम्भ की दृष्टि से निश्चित कर लेनी पड़ती है। इसी को हम आधुनिक युग की भाषा में 'जीने की कला' कहते हैं। 'जीने की कला' जो जिसे आ गई है उसका जीवन सफल होजाता है, आनन्दमय बन जाता है। किन्तु इस कला को वही पा सकता है जिसने जीवन को ठीक तरह से समझा हो। भारत के एक प्रसिद्ध कलाकार ने एक रूपक दिया है—

एक बूढ़े ने युवा से कहा—तुम अभी बच्चे हो तुम्हें क्या पता काम कैसे होना है? मैं इस सारे सभा का प्रधान हूँ, और इतना विशाल अनुभव है मेरा? तुम्हारे अनुभवहीन हाथों में इस सभा को छोड़ दूं तो तीन दिन में तुम इसे चौपट कर दो यह मेरे जीवन में नहीं हो सकता। पक्के पीले पत्ते ने ऊगती कोंपल से कहा—"मैं दुनिया का रामरंग देख चुका। अब तुम यहाँ आराम से रहो खिलो और खेलो। मैं अब नीचे की हरी घास पर विश्राम करूंगा।' इधर वह युवक गम्भीर बना कड़वी बातों से बूढ़े को देख रहा था।

उधर वह कोपल आँख के इशारे से रस भरकर नीचे की ओर उड़ते हुए उस पक्के पीले पत्ते को देख रही थी। बूढ़े के श्वेत केशों मे उसके श्वासो की सख्या लिखी है। उन दोनों मे से जीवन को पत्ते ने ठीक तरह से समझा और अपनी जीवन–कला मे सफल हुआ।

यही हाल हमारे आधुनिक समाज के युवकों और बूढो का है, वे जीवन को ठीक ढग से न समझ पाने के कारण ससार की मोहमाया की अधेरी गलियों में चक्कर काटते फिरते हैं। दोनो ही अपने अधिकार पाने की धुन में रहते हैं। कर्त्तव्य निभाने का माद्दा प्राय दोनो मे नहीं होता है। इसी कारण जीने की कला मे वे कोसो दूर होजाते हैं। हर बात मे वे जोरआजमाई करेगे, अधिकार की भाषा मे बात करेंगे, परन्तु सयम और मर्यादा के पवित्र सूत्रो को भूल जायेंगे। इसी कारण जीने का मजा किरकिरा होजाता है। वे जीते हैं, पर लाचारी से विवश होकर, समय काटना है इसलिए। उनके जीने में कोई रस नही, कोई सौन्दर्य नहीं, कोई सत्य नही।

जैन धर्म के महाप्रेरको ने जीवन की प्रत्येक क्रिया व प्रवृत्ति को साधना का रूप दिया है, उन्होने किसी भी क्रिया या प्रवृत्ति की सख्या को महत्त्व नही देकर गुणवत्ता को ही महत्त्व दिया है, उनकी दृष्टि मे quantity (सख्या) इतनी मूल्यवान नहीं, जितनी कि quality (गुणवत्ता) मूल्यवान है। उन्होने अपने साधको को यही बतलाया कि चाहे जिस छोटी-से-छोटी प्रवृत्ति क्रिया या साधना को लो, पर उसमें तन्मय होकर, दिलचस्पी लेकर, अच्छे ढग से, विवेक पूर्वक पूर्ण करो। चाहे वह प्रवृत्ति थोडे समय ही की हो, किन्तु उसे करो सम्यक् प्रकार से। जैन धर्म की पौषध व सामायिक की साधना मे उस साधना

का लकर सम्यक प्रकार मे पालन न करने का अतिचार (दोष) बताया गया है । देखिये वह पाठ—

'पोसहस्स सम्म अणणूपालणयाए'
'सामाइयस्स सम्म अणणूपालणयाए'
'सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणाए'

इसी प्रकार इस साधना मे प्रमाजन प्रतिलेखन का भी विधान है उसके लिए भी बताया गया है कि प्रमाजन या प्रतिलेखन तो किया हो, लेकिन सम्यक प्रकार मे न किया हो तो अतिचार है ।

हाँ, तो मै आपसे कह रहा था कि जीवन म सम्यक प्रकार मे जीने के लिए कोई भी प्रवृत्ति या काय अपने आप मे बुरा नहीं है, बशर्ते कि उस प्रवृत्ति या काय के पीछे कोई सत्य हो, हितकारिता हो, उसे सम्यक प्रकार से दिलचस्पी से विधिपूर्वक किया गया हो ।

इग्लैण्ड के हाउस आफ कॉमन्स में कभी-कभी बडी सरगम चर्चा चल पडती है, जिससे सदस्यो म काफी चख-चख हो जाया करती है । एक समय एक धनाढ्य व्यक्ति ने अभिमान म गजते हुए अपने प्रतिपक्षी से कहा— क्या वह दिन तुम भूल गये जिस दिन तुम मेरे पिताजी के घूटो पर पालिश करने का काम किया करते थे ? आज मेरे सामने ऐंठ रहे हो ? प्रतिपक्षी सदस्य निधन कुटुम्ब का होते हुए भी प्रारम्भ से ही वह कत्तव्यनिष्ठ, स्वावलम्बी और जीवनकलासम्पन्न रहा था । उसने मुस्कराते हुए उपस्थित सदस्यों के सामने कहा— आपका कथन यथाथ है किन्तु बतलाइए, क्या मैं अच्छी तरह से पालिश नहीं करता था ? कोई भी काय, जिसके पीछे एक सत्य हो,

सेवा भावना हो, अपने आप मे भला या बुरा नही है, छोटा या बडा नही है। किसी भी कार्य को करने मे शर्म का अनुभव नहीं होना चाहिए। शर्म तभी अनुभव होनी चाहिए, जब उसे योग्यता, वफादारी व ईमानदारी पूर्वक न किया हो। मनुष्य को अपने कार्य के प्रति, यदि वह लोकहितकर है तो निष्ठावान होना चाहिए, उसे दिलचस्पी से पूर्ण करना चाहिए, इसी में उसका गौरव है।"

जिस व्यक्ति में कर्त्तव्य निष्ठा आजाती है, वह जीने की कला में शीघ्र पारगत हो सकता है, किन्तु जहाँ जीने की कला मे बाधक तत्त्वो का विवेक नही होता, हेय उपादेय का ज्ञान नहीं होता, जीवन के विकट प्रसगो में मनुष्य साधना पथ को छोड कर भाग खडा होता है, वहाँ जीने की कला नही है। और जिसे जीवन कला मे बाधक तत्त्वो का ज्ञान नही होता, वह कई अच्छे कार्य करते हुए भी एकाध दोषो से अपने जीवन को दुखपूर्ण, दयनीय और कलाहीन बना लेता है।

एक बहिन थी, वह बडी कर्मठ थी, पर उसमे दो दोष थे। एक तो यह कि वह किसी का थोडा सा काम कर के सबके सामने बार-बार कहती फिरती थी। दूसरा यह कि किसी को अपने से ज्यादा सुखी वह नही देख सकती थी। यहाँ तक कि कोई पति अपनी पत्नी से प्रेम करे या बीमारी मे उसकी सेवा करे तो यह भी उसे बुरा लगता था, वह निन्दा किया करती थी। इसके कारण खूब काम करने पर भी अन्त में उसे गालियाँ और कटुवचन ही पुरस्कार मे मिलते। यहाँ तक दुर्दशा थी कि उसकी इस बुरी आदत के कारण उसके माता पिता के नाक मे भी दम था। दूसरो का बहुत कुछ काम करके भी, अपनी गन्दी आदत के कारण,

अपनी तुच्छ मनावृत्ति के कारण वह किसी के लिए भी न बन पाई । अगर उस जीने की कला का ज्ञान होता तो वह अपने जीवन को बहुत आनन्दमय बना सकती थी, उच्च पद पर ले जासकती थी ।

जस चन्द्रमा में सौम्यता, शीतलता, प्रकाश, आह्लादकता आदि अनेक गुण होने पर भी उसका काला धब्बा उसकी सारी शोभा नष्ट कर देता है, उसी तरह मानव जीवन में भी अन्य सब बातें हाते हुए भी कुछ निरर्थक बाता, अयनूय कार्य निष्प्रयोजन प्रवृत्तियाँ जीने की कला में इतनी बाधक हो जाती है कि उनके कारण सारा अच्छा जीवन बिगड जाता है असफल हो जाता है। भ० महावीर ने उन निरर्थक, और अनर्थकर बाता स बचने के लिए गृहस्था को एक व्रत की ओर सकेत किया है, जिसका नाम 'अनर्थदण्ड विरमण व्रत' है। उसमे अपध्यान प्रमाद अतिहिंस्र प्रवृत्तियाँ, पापकार्यों की प्रेरणा आदि दोष जीवन कला के लिए बाधक और अयनूय बताए ह । आज के युग म इस व्रत का क्षेत्र काफी व्यापक होसकता है, उसका अर्थ भी व्यापक दृष्टि से सोचा जासकता है । किसी शुभ काय का उत्साहित हाकर न करना, ईमानदारी पूवक न करना व्यथ के कार्यों में, प्रवृतिया म या निठल्ले बठ कर समय को बर्बाद करना काय शुभ और शुभ उद्देश्य से शुरु करन पर भी लोगा की ओर से सराहना, अनुमोदन और प्रतिष्ठा प्राप्ति की ओर आँखे उठा कर देखना, काय को रस पूवक,-सम्यक प्रकार स कल्याणमयी भावना से न करना, लागा की अच्छी बुरी राय पर काय बदलते रहना अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति को जीवन की अनेक शुभ प्रवृत्तिया, शुभ कार्यों मे न लगा कर उसका उपयाग बर्बादी करने में, बेईमानी

करने मे, असत्य वोलने में, असत्याचरण करने मे, मार काट करने मे, आवश्यकता से अधिक सग्रह करने और लालसा वृति वढाने मे दुनिया की वस्तुओ को अनावश्यक ही विगाड़ने मे करना उपयुक्त अनर्थदण्ड विरमरण व्रत के ही दोप—जीने की कला मे वाधक तत्त्व ही समझने चाहिए। जिसने जीने की कला का महत्व समझ लिया है, वह अपने समय, शक्ति और साधनो का दुरुपयोग जरा भी वर्दाश्त नही करेगी। वह जिस क्षण इस सत्य को समझ जायगा, उसी क्षण से अपने जीवन को नया मोड देदेगा।

एक वेश्या थी। उसके पास सौन्दर्य था, जवानी थी, वैभव था। वीसो युवको को इशारे पर नचा चुकी थी। पर उसके दिल को शान्ति न थी, उसके दिल मे आनन्द नही था। वह दुनिया का शिकार करती थी, पर दुनिया उसका शिकार करती थी। उसने जीवन की कला को समझा, अपनी शक्तियो, साधनो और समय का सदुपयोग करने की ठान ली। अपना निन्द्य धधा उसने छोड दिया और अपने धन की और साधनो का उपयोग रास्तो पर थके मादे यात्रियो के लिए धर्मशालाऐ, वनवाने, कुँए वनवाने और सादगी से जीवन विताने वाली वहिनो के खानपान का प्रवन्ध करने मे किया। वह स्वय सादगी से और सयम से रहने लगी। गरीवो को तो वह मदद करती ही थी पर मध्यम वर्ग के, उन कुलीन कहे जाने वाले कुटुम्वो को भी चुपचाप मदद करती थी, जो माग नही सकते थे। आखिर वेश्या का नाम घर-घर फैल गया। उसके जीवन पर आई हुई डामर की कालिमा पर पक्के सफेदे का ऐसा चित्र वन गया कि वह पूर्व कालिमा भी उस चित्र का अग वन कर शोभा वढाने लगी। इतिहास मे उस अवपाली

वश्या का नाम प्रसिद्ध है, जिसने महात्मा बुद्ध के चरणों में सर्वस्व समर्पित करके अपने जीवन को सफल और कलामय बनाया था ।

आप यह चिन्ता मत कीजिए कि आपका भूतकाल का जीवन कैसा गलत ढंग से बीता है ! आप भविष्य के निर्माण की सोचिए, वर्तमान को सफल और कलामय बनाने की ओर ध्यान दीजिए । अगर आप गृहस्थ हैं तो गृहस्थ के कर्त्तव्यों का सुन्दर ढंग से पालन कीजिए, परिवार, समाज, राष्ट्र और मानव जाति के प्रति उत्तरदायित्व का निभाइए। अपने जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति, कार्य या वृत्ति को जीने की कला की दृष्टि से तौलिए, परखिए और फिर अगर वह सत्य जंच जाय, हित कर समझ में आ जाय तो बिना किसी हिचकिचाहट के, बिना किसी के अनुमोदन-अभिनन्दन के उसे करते जाइए । आपके जीवन की सफलता निश्चित है आपका भविष्य उज्ज्वल है । आपका जीवन शीघ्र ही जीने की कला की पगडंडियों को पकड़ लेगा, जहाँ से गिरने की कोई सम्भावना नहीं, जहाँ से फिसलने का कोई अनुमान नहीं ।

मानवता का अन्तर्नाद

आज बीसवी शताब्दी के युग में यदि किसी विषय पर अत्यधिक सोचा जारहा है तो वह है—मानवता । सभी राष्ट्रो मे, प्रान्तो मे, समाजो मे, पन्थो में और सम्प्रदायो में आज मानवता पर अधिक से अधिक सोचा जाने लगा है । मनुष्य जाति का चिन्तन आज इसी विषय पर अत्यधिक चलना चाहिए; मनुष्य का श्रवण, मनन और निदिध्यासन आज मानवता की गूढ गुत्थियो को सुलझाने में लगना चाहिए, सभी राष्ट्रो का निर्माण मानवता की पृष्ठभूमि पर ही होना चाहिए; यह एक स्वर से आज के महामनीषी पुकार रहे है ।

प्रश्न होता है, अन्य बातो पर, मानव जीवन की भौतिक और आर्थिक सिद्धियो पर सोचने से आज लोग रुक क्यो रहे है ? क्यो आज मानवता ही उनके अन्य विषयो के चिन्तन मे चीन की दिवार बन कर खडी है ? क्यो वे आज अपनी पञ्चवर्षीय, त्रिवर्षीय और द्विवर्षीय योजनाओ को सफल करने के लिए 'मानवता' को केन्द्रबिन्दु में रख कर आगे बढना चाहते है ?, क्यो नहीं मानवता को छोड कर मानव के विकास की ओर ध्यान दिया जारहा है ? मानवता ऐसी क्या वस्तु है, जिसके होने पर ही हमारे विचारो और आचारो की रथ यात्रा जीवन के मेदानो में होसकती है ? मानवता

ऐसा कौनसा प्रकाश है जिसके बिना आध्यात्मिक मार्ग में अंधेरा छाजाता है ? मानवता एसा कौनसा सगीत है जिसके बिना हमारी–जीवन वीणा बज नहीं सकती ? ऐसी कौनसी विशेषता मानवता में सन्निहित है, जिसके बिना हमारा जीवन गुडगोबर होजाता है ? 'मानवता एसी क्या बहुमूल्य वस्तु है जिसके न होने पर मनुष्य अपने लक्ष्यबिन्दु तक नही पहुँच सकता ?

ये और इसी प्रकार के अन्य प्रश्न हमारे मन मस्तिष्क म आज घूम रहे हैं, जिनके हल किये बिना हमारी कोई गति नहीं हमारी कोई हस्ती नहा ।

बीसवीं सदी के प्रकाश के चकाचौंध म मानव देख रहा है कि वैज्ञानिक महानुभावो के मनन प्रयत्न से स्वर्गीय वैभव उसके पास उतर आया है, यन्त्रयुग ने मानव को सुख के असीम सागर में नहला दिया है । नल का मुह खोलते ही गगा यमुना उसकी पद–रज धोने को तयार रहती है, स्वीच दबाते ही महाप्रकाश उसे अन्धकार के भय से उबार लेता है, उसकी आँखें इतनी बडी होगई है कि वह यहाँ बैठा–बैठा हजारो कोस दूर की बात को देख सकता है, उसके कान इतने लम्बे होगये हैं कि वह हजारो मील के शब्द एक क्षण में श्रवण करलेता है उसकी टागें इतनी गतिशील होगई है कि वह लाखो और करोडो मील की यात्रा जल स्थल और नभचारी बनकर कर लेता है उसकी पहुँच इस दृश्यमान पृथ्वीपिण्ड पर ही नहीं चन्द्रलोक और आकाश के अन्य ग्रहो तक होने लग गई है उसका मस्तिष्क हजारो ग्रन्थो को अपने में समा लेने की शक्ति रखने वाला बन गया है उसके हाथ हजारो आदमियो का काम अकेले करने लग गये हैं पृथ्वी पर उसके लिए छोटी सी लगती है उसका छोटासा मुह

असली समाधान की उपेक्षा करके वह समस्याओं को निविन्तम और गहन बनाता जारहा है, और नकली समाधान में संतुष्ट होरहा है। अपने जीवन का विधाता मानव आज जीवन से हार चुका है। उसके पास सब कुछ आंतरिक वैभव है किंतु वह कस्तूरीमृग की तरह उसे बाह्य वैभव में ढूंढ रहा है। उसकी जीवन में हार का कारण उसके सामने खडा मानव जगत् है, जिसे वह नहीं पहचान रहा है। मानव मानव को जड से उखाड़ने पर तुला हुआ है आदमी आदमी के लिए सिरदर्द का कारण बना हुआ है मनुष्य मनुष्य के बीच चौडी खाइयां बढती जारही हैं, मानव को मानव से खतरा बना हुआ है मानव का मानव पर अविश्वास बढता जारहा है, मानव मानव के लिए विभीषिका बन गया है।

प्रत्येक मानव का मन आज आकांक्षाओं के यातना से घिर रहा है, युद्धों की विभीषिका से त्रस्त होरहा है। एवरेस्ट का आरोहण करने वाले मानव के चरण मानव की कुटिया तक पहुँचने में असमर्थ होरहे हैं सुनहरे गगन में गति करने वाले मानव को पृथ्वी से नफरत होने लगी है सारी पृथ्वी उसे कांटों से भरी दिखाई देने लगी है। महावीर बुद्ध, राम, कृष्ण, ईसामसीह और गांधी के मानवता के पाठों को वह उपेक्षा की दृष्टि से देखने लग गया है, स्वार्थों की बहार में परमार्थ और परार्थ उसकी आंखों से ओझल होगये हैं। विश्व की मानव जाति के भाग्यसूत्र रूस और अमेरिका से बंधने लगे हैं। विविध वादों के कोलाहल में मानव अपना मानवता के अन्तर्नाद को भूलता जारहा है। वह यह नहीं सोच रहा है कि इन सब बाह्य वैभवों के बढ जाने पर भी वैभव के सागरों के द्वारा उसका चरण प्रक्षालन होने पर भी वास्तविक

सुख, शान्ति और प्रेम का स्रोत क्यो सूख रहा है ? वात्सल्य के फव्वारे क्यो बन्द पडे है !

सचमुच, मानव बाहर से विकसित होता दिखाई देरहा है, पर भीतर से मुर्झा रहा है। उसकी इन्द्रियो की शक्ति बढती नजर आरही हे, पर हृदय की शक्ति सिकुडती जारही है। मानव स्वयं जी रहा है, पर मानवता मर रही है।

मानव की शक्लो मे आज हजारो लाखो करोडो आदमी घूम रहे हैं, पर उनमे सच्चे मानव कितने मिलेगे ? सच है, जहाँ मानव मे मानवता का प्रकाश बुझ जाता है, वहाँ अधकार ही शेष रहता है। जहाँ अधकार है, वही तो टक्कर है, वहीं तो स्वार्थो का बोलबाला है, वही तो दु ख की काली आँधियाँ उठती है, वही तो हृदय-हृदय के बीच चौडी खाइयाँ बढती है। भारत वर्ष मे न तो धर्मो की कमी है, न सम्प्रदायो की कमी है, न साधुओ की कमी है, न गुरुओ की। न नेताओ का अभाव है, न उपदेशको का। फिर भी सम्प्रदायवाद, पथ वाद, पोथी-वाद, जाति-वाद, गुरुडम-वाद, प्रान्त-वाद और भाषा-वाद के दानव भारत की छाती पर छाये हुए है। इन्हीं दानवो ने भाई के हाथो भाई को मरवाया है, दो पडौसियो के बीच सिर फुटौवल पैदा की है, एक ही भारत माता के उदर मे लोटे हुए लालो मे महाभारत खडा कर दिया है। हम हजारो टुकडो मे बट चुके हैं, हमारे मस्तिष्क मे हजारो खाने बन गये हैं। हमारे विचारो मे सकीर्णता के कारण मानवता खण्ड खण्ड हो रही है। हमारे सोचने का तरीका ही गलत होगया है।

हम किसी से भी पूछते है—"आप कौन है ?" तो वह कहेगा कि मै हिन्दू हूँ, या मै मुसलमान हूँ, या जैन हूँ, पारसी

हूँ सिक्ख हूँ या ईसाई हूँ अथवा जातिवाद की भाषा म बोलेगा तो यही कहेगा – 'म ओसवाल हूँ या पोरवाल हू या अग्रवाल हूँ या गोल हू ढेढ हू, चमार हूँ, धोबी हूँ या मोची हू । प्रांतवाद की भाषा म बोलेगा तो कहेगा – 'मै महाराष्ट्रीयन हू, म बगाली हूँ मैं विहारी हू, मैं पजाबी हूँ या गुजराती हूँ या सिंघी हूँ । बीस तरह वे अलग अलग नाम बता दगा परन्तु वह यह नहीं कहेगा कि मैं मानव हूँ और भारतीय हू । प्राय शिक्षा सस्थाओ मे, साम्प्रदायिक सस्थाओ म जाति सस्थाओ में, राजनैतिक सस्थाओ मे व्यापारिक सस्थाओ म सवत्र वह बीमारी घुस गई है । छोटे बच्चो को पता ही नही होता कि म किस सम्प्रदाय, जाति या प्रान्त वाला हू, परन्तु माता पिता, या समाज वाले लोग उसके दिमाग म सकीर्णता का भूत घुसा देते हैं, उसकी मानवता निकाल कर दानवता का प्रवेश करा देते हैं ।

पर मानवता तो इन सब भेदो से ऊपर उठ कर अभेद की ओर ले जाने वाली है । जब हम अपने आपको जातीय प्रान्तीय, सम्प्रदायीय, राष्ट्रीय, आदि सब दीवारो को लाघ कर आगे देखना और सोचना आरभ कर देंगे, तभी हमारे सारे सघर्ष समाप्त होगें, सारी सकीर्णता दूर होगी, सारी भेद की फौलादी दीवारें टूटेंगी, दिल जुडेगे, हृदय मिलेंगे, मनोमालिन्य नौ दो ग्यारह होगा, स्वार्थ की ज्वालाएँ बुझेंगी । जब हम अपने को टुकडो म, भेदो मे और विभिन्न रूपो मे देखते हैं तो एक दूसरे को देखते ही द्वेष की ज्वाला भडक उठती है हिन्दुस्तानी पाकिस्तानी को देखता है, रशियन अमेरिकन को देखता है तो मन म क्रोध की आग धधकने लगती है, द्वेष का दावानल सुलगा

लगता है। मानवता की पवित्र गगा में स्नान करते ही, मानवता की उत्ताल तरगे हृदय सरोवर मे उठते ही ये सारी भेद की दीवारें एक–एक करके गिरती जायेगी, मानव सुख और सतोप की सास लेगा।

मानव और मानवता में उतना ही अन्तर है जितना दूध और दूध की वोतल मे। यदि आपको दूव पीना है तो किसी न किसी वोतल या पात्र में होगा तभी पी पायेगे। दूध की खाली वोतल के रूप में मानव शरीर है, अगर मानवता रूपी दूध उसमे नही है, तो वेकार है। आपने एक वहुत अच्छी दूकान मौके पर किराये ले ली है। उनमे अलमारियाँ, शोकेस, टेवल, कुर्सियाँ आदि सजा दी है, ज्वेलरी हाउस का साइनवोर्ड भी आपने लगा दिया है, परन्तु यदि उस दूकान मे माल कुछ भी नही है, ग्राहक आता है, तो खाली लौट कर जाता है, तो वह दूकान एक धोखे की टट्टी है। उससे कोई लाभ नही है दूकानदार को न ग्राहक को। इसी प्रकार यदि आपने मानव शरीर पा लिया है, उसे खूव मोटा ताजा भी वना लिया है, विविध अलकारो से उसे विभूपित भी कर दिया है, परन्तु कोई भी मानव आपके सम्पर्क में आता है, उसे आप घृणा की दृष्टि से देखते है, उसका तिरष्कार करते है, अपनी सेठाई के अभिमान मे आकर उसको दुत्कार देते है, पास मे शक्ति होते हुए भी किसी को दु.खित, पीड़ित और कराहते हुए देख कर भी आगे टरक जाते है, आपके हृदय मे मानव को देख कर प्रसन्नता की लहरे नही उठती है, आपका हृदय मनुष्य के वाह्य जाति पाँति या सम्प्रदायो के लेवलो को देख कर वही ठिठक जाता है तो कहना चाहिए कि आपके यहाँ भी 'ऊँची दूकान फीका पकवान' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही

है । आप मानव तो हैं, परन्तु मानवता नहीं है । मानव शरीर रूपी दूकान तो आपने विविध फर्नीचरों से सजा ली है किन्तु मानवता रूपी माल आपकी दूकान मे नही है ।

सचमुच आज के मानव की यही स्थिति हो रही है। कल्पना कीजिये एक मानव इस व्याख्यान हाल म व्याख्यान सुनने के लिए आना चाहता है तो वह दरवाजे मे से ही होकर अदर आ सकेगा क्योंकि यही इसमे आने का रास्ता है। यदि आगन्तुक मानव यही विचार करे कि मैं इस दरवाजे मे से होकर अन्दर न आऊ या ही सीधा पहुँच जाऊँ, तो क्या वह व्याख्यान हाल मे प्रवेश कर सकेगा? नहीं, उस हठीले मानव का मस्तिष्क दिवाल से टकरा कर चकनाचूर हो जायगा, किन्तु वह इसमे प्रवेश नही कर सकेगा। यही बात धर्म-रूपी भव्य-भवन के हाल मे प्रवेश करने के सम्बन्ध मे कही जा सकती है । जब तक उसके द्वार का पता नही, तब तक वह इसमे प्रवेश नहीं पा सकेगा। हाँ तो धर्म रूपी भव्य-भवन का द्वार मानवता है। जब तक जीवन मे मानवता नहीं आएगी वहाँ तक धर्म के द्वार मे प्रवेश नही हो सकेगा । मानवता के अभाव मे हम कितना भी प्रवेश का प्रयत्न क्यों न करे, धर्म रूपी सुदर-सदन मे प्रवेश नहीं कर सकेंगे।

आज से २५०० वर्ष पूर्व आर्यावर्त के महामानव श्रमण शिरोमणि भ० महावीर ने अपने अन्तिम प्रवचन म यही बात बताई थी। उन्होने कहा कि धर्म—साधुता, और श्रावकता से पहिले मनुष्यता अवश्य होनी चाहिए। उन्होने चार दुर्लभ बातो मे मानवता सर्व प्रथम दुर्लभ कह कर जगत् के जीवो को उद्बुद्ध कर दिया है—

'चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो
माणुसत्तं, सुई, सद्धा, संजमम्मि य विरियं ।'

इस जगत् के विशाल प्रागरण मे प्राणियो को चार बाते बडी दुर्लभ है, उनमे सर्व प्रथम मनुष्यता प्राप्त करना, तत्पश्चात् क्रमश श्रवण, श्रद्धा और सयम मे (धर्म मे) शक्ति लगाना।

अगर सर्व प्रथम मनुष्यता नही आई तो दूसरी तीन बातें उससे सैकडो कोस दूर है। आज सभी मानव, जो भौतिकवाद के प्रवाह मे वह रहे है, अर्थ और काम की विपुल चकाचौंध मे चौंधिया रहे है, मानवता को छोड़ कर आगे बढने का उपक्रम करते है, उन्हे भ० महावीर के इन वचनो से प्रेरणा लेनी चाहिए। आज का मानव किसी भी धर्म का अनुयायी बन कर चलने मे गौरव मान रहा है, किसी भी सम्प्रदाय के क्रियाकाण्डो के पहाड खडे करके अपने को धर्मात्मा मानने का सतोष प्राप्त कर रहा है, साधु और श्रावक कहलाने मे ही अपने जीवन का इतिकर्त्तव्य समझ रहा है, पर उसके जीवन मे असली चीज, जो मानवता है, वह नही आई है, तो उसका सारा परिश्रम 'काता पींजा पुन कपास' होने के समान है। जिन्दगी मे बहुत वर्षो तक यो ही पापड बेलते रहने मे कुछ भी सार नही है।

यदि किसी ने मानव शरीर ही प्राप्त कर लिया, किन्तु मानवता नही प्राप्त की तो उसका कोई महत्त्व नहीं है, ज्ञानियो की दृष्टि मे। मानव शरीर तो एक चोर को भी मिला है, जो इस अमूल्य तन् को पाकर भी चोरी जैसे पापकर्मो को करके नष्ट कर देता है, मानव शरीर तो एक वेश्या को भी प्राप्त हुआ है, किन्तु वह केवल समाज की तरुणाई के साथ खिलवाड करके अपना जीवन बिगाड देती है तो उससे क्या लाभ हुआ? मानव शरीर तो एक धनपति को भी उपलब्ध हुआ है, किन्तु वह

दूसरा पर अत्याचार और शोषण करके जीता है, दूसरा के साथ घृणा और द्वेष करके अपनी जिन्दगी बिता देता है तो उस मानव शरीर का क्या मूल्य ? सच है, मानव शरीर को पाकर भी मनुष्यता प्राप्त नहीं की मनुष्यता अपने अन्तर में नही जगाई तो सारा किया कराया गुड़ गोबर है । मानव शरीर से लाखों और करोड़ों आत्मियों का एक बार नहीं, असख्यबार मिल चुका है, पर उसका कोई फायदा नहीं हुआ, वह मिलना न मिलने के बराबर ही हुआ । इसीलिए भारत के मनीषियों ने मानव शरीर की अपेक्षा मानवता को महत्त्व ज्यादा दिया है । उन्होंने अपनी शान्त वाणी में यही कहा—

'नहि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्'

मनुष्यत्व से श्रेष्ठतर वस्तु इस दुनिया में कुछ भी नही । हाँ तो मैं आपसे कह रहा था कि मनुष्य शरीर की विशेषता किसमे है ! क्या मानव शरीर पाकर आपने दो हाथ के बदले चार हाथ प्राप्त कर लिए, या एक मुह के बदले दो मुह पा लिये या दो पैरों के बदले दस बीस पैर पा लिए या आपने किसी पर शासन करके, किसी के धन पर कब्जा करके, किसी देश को हड़प कर, तीसमारखा का घृणित पद पा लिया ? क्या लम्बे चौड़े सुन्दर सुरूप शरीर के पाने से ही मनुष्य शरीर सार्थक है क्या बलवान और पहलवान बन जाने मे ही मनुष्य तन की विशेषता है क्या अन्यायोपार्जित सम्पत्ति का ढेर लगा लेने मे ही मनुष्य देह का महत्त्व है, क्या लम्बा चौड़ा परिवार बना लेने मात्र से ही मानव मूर्ति सफल है ? आखिर मनुष्य शरीर की सार्थकता किसमें है ? लम्बे चौड़े सुन्दर और सुरूप शरीर के पाने वाले प्रख्यात पराक्रमी सनत्कुमार चक्री और वासवदत्ता वेश्या की

कहानी तो आपने सुनी ही होगी ? उनके शरीर का क्या हाल हुआ था ? क्या उनके सौन्दर्य के गर्व को मृत्यु ने चेलेञ्ज नही दे दिया था । एक वलवान और पहलवान आदमी के शरीर को क्या एक छोटा सा क्षुद्र जन्तु मलेरिया का मच्छर चुनौती नहीं दे सकता ? क्या वडे-वडे धनपतियों और धन कुवेरो को उनके अपने काले कारनामो ने एक दिन समाप्त नहीं कर दिया ? क्या लम्वे और चौडे परिवार वाले यादवो, कस और रावण को उनके ही वन्धुओ के सामने घृणित और दूषित ढग से इस ससार से पापकर्म के साथ विदा नही होना पडा ? सचमुच, मानव जीवन मे रूप, वल, वुद्धि और वैभव की, अपने आप में कोई कीमत नही है, अगर मानवता न हो तो !

मानवता सभी धर्मो की जन्मभूमि है । मानवता सभी धर्मो का प्राण है, सत्त्व है । अगर किसी भी धर्म मे मानवता नहीं है, तो वह धर्म दुनिया के किसी काम का नही है, वह धर्म मानव जीवन के लिए अभिशाप है। जो धर्म मानवता को छोड़ कर, मानवता की अपेक्षा करके फैलना चाहता है, दुनिया के दिल मे वैठना चाहता है तो उसका यह प्रयत्न वालू मे से तेल निकालने जैसा है। मानवता के विना धर्म नि सत्त्व है, निष्प्राण है, कोरा कलेवर है । पर आज, सभी सम्प्रदायो मे 'मानवता' को तिलाञ्जलि देकर, मानवता को आँखो से ओझल करके गति प्रगति करने की होड लगी हुई है । इसलिए वे धर्म और धर्म के अनुयायी दयनीय वने हुए है । उनकी स्थिति तेल शून्य दीपक जैसी वनी हुई है। अगर किसी दीपक मे केवल वाती हो, मिट्टी के प्याले का आकार वह पाए हुए हो, उस

पर सुदर रग-रोगन कर दिया गया हो उस सुदर काच के बावस म बन्द करके सजा कर रख दिया गया हो, किन्तु उसम तल बिन्दु भर भी न हो ता ऐसे दीपक का महत्त्व क्या है ? क्या ऐस दीपक म अधकार मिटान का और प्रकाश का काम लिया जा सकता है ? ठीक इसी प्रकार अगर हम शरीर की खूब सजावट करें उसे सुन्दर सुरूप बनालें पाउडर और क्रीम पोत कर उसकी चमक-दमक बढा दें गहने और कपडो म उसे लाद दें, एर चमचमाती हुई सुदर कार म उस शरीर को बिठा दें घडी चश्मा और फाउन्टेनपन यथास्थान लगा दें और उस शरीर मे मानवता रूपी तेल न डालें तो ऐसे शरीर स क्या जिन्दगी की रोशनी मिल सकती है ? लम्बा चौडा चमकीला और सुन्दर, सुपुष्ट शरीर तो अजगर का भी होता है । पर उससे क्या हुआ ? यदि आप मे मानवता नही आई ता मानव शरीर पथ्वी के लिए भारस्प है बेकार है एक सिर दर्द है ।

पर आज चारो ओर मानव को मानव स शिकायत है मानव की आलोचना-प्रत्यालोचनाए मानव द्वारा हो रही है मानव की जड बुद्धि मानव के लिए भय साबित हो रही है। मानवता बेचारी आठ-आठ आँसू बहा कर, मानव के नाम पर रो रही है । मानव की बुद्धि शुष्कता के द्वारा अपनाए हुए राजनीति समाज, धर्मों एव राष्ट्र म सर्वत्र मानवता पराजित होकर मानवता रो रही है ।

इसीलिए आज सभी दार्शनिक, धार्मिक, विचारक समाज नेताओ राष्ट्र नेताओ की नीद उड गई है, वे यह सोचने को मजबूर हो गए है कि मानवता नाम की अमूल्य वस्तु हमारे पास न हुई, मानव जाति म से मानवता लुप्त हो गई तो मानव व्यवहार कैसे चलेगा ? मानव जाति का स्थायित्व और

अस्तित्व कैसे रहेगा ? दानवता खिलखिलाकर हस रही है, पाशविकता ताण्डव नृत्य कर रही है और ससार की विनाश-लीला देखने के लिए आतुर हो रही है। ऐसे सकटापन्न प्रसग मे हमे मानवता के अपनाने, मानवता को पहचानने, मानवता का उचित मूल्याकन करने और मानवता को प्राथमिकता देने मे शीघ्रता करनी चाहिए। अन्यथा; मानवता विहीन मानव के द्वारा ही सारा विश्व श्मशान के समान बन जायगा और उसकी दारुणदु.ख जनक कल्पना ही हमारे रोम रोम मे सिहरन पैदा कर देगी।

प्रश्न हो सकता है, कि मानवता ऐसा क्या वस्तु है ? उसकी वास्तविक परिभाषा क्या है, उसे हम कैसे पहिचान सकेगे और अपना सकेगे ? नि.सदेह यह प्रश्न काफी विचारणीय है और इसके उत्तर हमे ढूढ लेने चाहिए।

मानव जीवन मे जहाँ मनुष्य का महत्त्व घटाकर मनुष्य को नजर अन्दाज करके, मनुष्य से बढकर धन को, भौतिक साधनो को, जाति को, सम्प्रदायो को, विवेकहीन परम्पराओ व मान्यताओ को, अन्धराष्ट्रीयता को, अन्धप्रान्तीयता को, अन्धभाषावाद को, अन्धतापूर्वक किसी व्यक्तित्व को महत्त्व दिया जाता है, मूल्याकन किया जाता है, वहाँ मानवता चकनाचूर होजाती है, वहाँ मनुष्यत्व नेस्तनाबूद होजाता है। जहाँ धन, साधन, जाति, सम्प्रदाय, पथ, अन्ध परम्परा, गुरुडमवाद, अन्धराष्ट्रीयता, अन्ध-प्रान्तीयता व अन्धे भाषावाद से ऊपर उठकर मानव के विषय मे विचार किया जाता है, मानव को महत्त्व दिया जाता है, मानव का मूल्याकन किया जाता है वही वास्तविक मानवता है, वही सच्चा मनुष्यत्व है, और इसी की ओर हमारे पूर्व महापुरुषो का सकेत है। जहाँ विवेकपूर्ण सतुलन रखकर मानव

मानव के साथ व्यवहार करता है, जहाँ धन साधन या सासारिक किसी भी पदार्थ की अपेक्षा मनुष्य का मूल्याकन अधिक किया जाता है, जहाँ मनुष्य को, फिर वह चाहे जिस देश जाति पथ और सम्प्रदाय का हो, किसी भी वेशभूषा म हो किसी भी भाषा का बोलने वाला हो किसी भी प्रान्त नगर या गाव मे रहने वाला हो किसी भी मान्यता या परम्परा का अनुयायी हो किसी भी विचारधारा म विश्वास रखता हो अगर उसे देखकर प्रसन्नता पैदा होती हो उसे देखकर प्रेम उमडता हो, उसे दुखी पीडित और हीन अवस्था मे देखकर करुणा और सहानुभूति पैदा होती हो, उसे शोषित, पददलित और अभावयुक्त स्थिति मे देखकर उसके दुख दूर करने की वृत्ति पैदा होती हो, उसे रोग या शोक से ग्रस्त देखकर सेवा करने की, सान्त्वना देने की भावनाएँ आदोलित होती हो उसे फटे हाल, नगे भूखे देखकर दयार्द्र दृष्टि से उसकी मुसीबत दूर करने के लिए हृदय मचलता हो, उसे किसी भी आपत्ति, विपत्ति और आधि व्याधि मे पडे देखकर आपका सकल्प कृतकार्य होता हो, उसे रोते हुए देखकर उसके आँसू पोछने को जी चाहता हो, उसे किसी भी व्यसन, बुराई और पतित अवस्था म फसा देखकर आपकी करुणापूर्ण वाणी और हृदय प्रेमपूर्वक अपना लेने और उबारने का प्रयत्न करने के लिए तत्पर हो उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति गिरी हुई, तिरस्कृत और उपेक्षित हो तो आपका मन सहानुभूति एव सहयोग के लिए बेचैन हो उठता हो तो समझना चाहिए वही मनुष्यत्व है मानवता है। जहा इसके विपरीत स्थिति हो मनुष्य को देखकर घृणा द्वेष, क्रोध, ठगी छलछिद्र मारकाट करने उससे परहेज करने, उसे किसी भी प्रकार के दुख म डालने की वृत्ति या कृति आपम

पैदा होनी हो तो समझना चाहिए, वहां मानवता की हार है, मानवता वहां खत्म हो गई है। जहां मानवता होती है, वहां कर्त्तव्यो और अधिकारो का विवेक होता है, सन्तुलन होता है, लेनदेन होता है। जहां केवल लेने ही लेने की वृत्ति है, जहां अधिकारो की ही भाषा मे मनुष्य सोचता है, कर्त्तव्य को गौण कर देता है, जहां कर्त्तव्य और अधिकार का सतुलन नहीं है, विवेक नहीं है, सभ्यता और मर्यादा की भाषा मे भी नही सोचा जाता है, वहां पशुता है, पाशविकता है। इससे भी आगे बढ कर जहां केवल अधिकारो की ही माग है, कर्त्तव्यशून्यता है, केवल छीनने और लूटने खसोटने की ही वृत्ति है, लेने का प्रकार भी जबरदस्ती, जोर जमा कर, कब्जा करके, हड़प करके लेना है, देना बिल्कुल नही है, अपनी ही, केवल अपने शरीर की ही चिन्ता है, अपना ही, केवल अपना ही पोषण करने की वृत्ति है, वहां दानवता है और जहा कर्त्तव्य ही मुख्य है, अधिकार की चिन्ता नहीं है, अधिकार लिप्सा बिलकुल मन्द है दे ही दे है, ले की आकाक्षा नही है कर्त्तव्य का पूर्ण विवेक है, सभ्यता और मर्यादा का पालन है, वहाँ देवत्त्व है। इन चारो कोटियो मे देवत्त्व की कोटि सर्वोत्तम है, उससे कुछ न्यून मनुष्यत्त्व की कोटि है। बाकी की दोनो कोटियाँ निकृष्ट और निकृष्टतम है।

मानव का दानव बनना उसकी हार है मानव का महामानव होना उसका चमत्कार है, परन्तु मानव का मानव होना उसकी विजय है।

अगर आपको मानवता को अपनाना है तो आपको 'दे' और 'ले' का सतुलन रखना होगा, विवेक करना होगा। अधिकार और कर्त्तव्य का बराबर ध्यान रखना होगा।

आज हमे अपने आप को टटोलना होगा, अपना निरीक्षण परिक्षण करना होगा कि कही हम कहलाने के लिए तो मानव है,

किन्तु कृत्य दानव का, पशु का सा तो नहीं कर रहे है ? हममे मानवता आई है या नहीं, या पशुता अथवा दानवता ही हमारे जीवन मे ताण्डव नृत्य कर रही है ? कहीं हम मानवीय आकृति मे पाशविकता और दानवता का परिचय तो नहीं दे रहे है ? हमे तन तो मानव का मिला है, पर मन भी मिला है क्या ? क्या आप निर्बलो, पतितो, दुखियो पर चील और कौए की तरह झपट कर, उन्हें नोच तो नहीं लेते हैं, दूसरो को भयभीत करने के लिए सर्प की तरह फुफकारते तो नहीं हैं जोंक की तरह दूसरो का खून तो नहीं चूस लेते है ? बिच्छू की तरह डंक मार कर किसी के तन-मन-नयन को आकुल-व्याकुल तो नहीं कर देते ? लाल आंखें कर बिल्ली की तरह गुर्राते तो नहीं हैं ? सिंह की तरह गर्जना कर किसी के जीवन का शिकार तो नहीं कर लेते हैं ? भेडिये की तरह दूसरो के अधिकार छीनने मे कुशल तो नहीं हैं, कुत्तो की तरह अपने सजातीय मानवो से लडते भिडते तो नहीं है, समाज मे, राष्ट्र मे, ग्राम मे नगर मे प्रान्तो मे और घर मे द्वेष की दावाग्नि तो नहीं सुलगाते है ?, रिश्वत ले कर, अन्याय-अत्याचार करके ठगी कर के शोषण करके और अधिकार जमा कर आप राक्षसी वृत्ति का कार्य तो नहीं करते ?, अपने अभिमान मे आकर दूसरे मानवो को अछूत और नीच समझ कर आसुरी वृत्ति के कृत्य तो नहीं करते ?

इस प्रकार की प्रश्नावली काफी लम्बी की जा सकती है परन्तु हमारे अन्तर्निरीक्षण के लिए और मानवता की जाच परख करने के लिए ये ही प्रश्न काफी हैं । आज प्रत्येक राष्ट्र मे पञ्चवर्षीय द्विवर्षीय, या त्रिवर्षीय निर्माण योजनाएँ बनती है इसमे बडे-बडे मस्तिष्क दिन और रात लगे हुए हैं, पर क्या

मानव निर्माण योजना के विना ये भौतिक समृद्धि की योजनाएँ सफल होसकती है, क्या मानव मे मानवता लाए विना, दानवता और पशुता को हटाये विना, राष्ट्र विकास की ये योजनाएँ अपने आप मे सार्थक हो सकती है ? अगर किसी राष्ट्र में मानवता मर गई है, किसी समाज मे मानवता दब गई है, किसी धर्म मे मानवता को धक्का देकर निकाल दिया गया है, तो वह राष्ट्र, समाज या धर्म कभी ऊँचा नहीं उठ सकता, उसकी नीव बालू पर टिकी हुई है और एक ही आँधी के झोके से वह गिर सकती है । आपके सामने दानवता और पशुता भी खडी है, और एक ओर मानवता भी खडी है । आपको इन दोनो विकल्पो में से एक को चुनना है । मानवता को अपनाएँगे तो आपका जीवन चमक उठेगा, आपका समाज, राष्ट्र, प्रान्त, धर्म, और जाति का भी सुनाम होगा । अन्यथा, आपकी मानवता लुप्त होते ही आपके समाज देश और धर्म की भी आपके साथ बदनामी होगी

स्वामी रामतीर्थ भारत के बहुत बड़े संत हो गये है, जिन्होने विदेशो मे जाकर भी भारतीय दर्शन का लोहा मनवाया था । उनके जीवन का एक प्रसंग है । वे एक बार एक जापानी जहाज मे यात्रा कर रहे थे । उस जहाज मे उन्हे अपने भोजन के लिए फलो की जरूरत थी, पर न मिले, बहुत ढूढने पर भी उन्हे फल न मिले तो वे निराश होगए, अपने स्थान पर आकर बैठ गए । जापानी लोगो में स्वदेशाभिमान कूट-कूट कर भरा होता है । वे अपने देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहते है । फलत उस जहाज मे बैठे हुए जापानी विद्यार्थी को पता लगा कि भारत के एक संत को, इस जहाज मे कहीं भी फल न मिला और वे भूखे बैठे हैं । उसने मनमे सोचा– "अगर यह संत

अपने देश वापिस जायगा तो हमारे देश की और जहाज की निन्दा करता फिरेगा, और यह बात हमारे देश के लिए कलंक की होगी। अतः मुझे किसी भी उपाय से इस वहीं में फल लाकर देना चाहिए। वह अपने स्थान से उठा और कुछ फल पास में लिए, कुछ अपने अन्य देशवासी मित्रों से इकट्ठे किये और लेकर स्वामी रामतीर्थ के पास पहुँचा। जाते ही उसने स्वामीजी के चरणों में वे फल रख दिये। और कहा—'लीजिए महाशयजी, आपको फलों की जरूरत थी न? आप इन्हें निःसंकोच ले लीजिए। स्वामीजी बड़े प्रसन्न हुए, फलों को पाकर और उस जापानी से फलों के दाम पूछने लगे, अपनी जेब में पैसे निकालते हुए। जापानी विद्यार्थी ने कहा—'महाशयजी, फलों की कीमत तो कुछ नहीं है और अगर आप कीमत देना ही चाहते हैं तो यह है कि आप जब अपने देश लौटें तो यह न कहें कि जापानी जहाज बस खराब होते हैं जहाँ फल भी नहीं मिलते। आप हमारे देश के बदनाम की पुड़िया इसी समुद्र में डालते जाएँ साथ में नहीं ले जाएँ।

यह उत्तर सुनकर स्वामीजी चकित रह गए और जापान देश की मानवता की प्रशंसा मन ही मन करने लगे लगे।

हाँ, तो किसी भी देश का कोई एक व्यक्ति अपनी मानवता को सुरक्षित रखकर अपने देश को सुनाम करा सकता है और मानवता को ठुकरा कर अपने देश को बदनाम भी करा सकता है। महात्मा गांधीजी ने विदेशों में अपनी मानवता को सुरक्षित रखकर भारतवर्ष का नाम सुनाम कराया और एक भारतीय विद्यार्थी ने मानवता विहीन कार्य करके अपने देश को बदनाम करवाया। प्रसंग इस प्रकार है—एक भारतीय विद्याध्ययन करने के लिए लन्दन गया था। ...ध्ययन करता था।

एक पुस्तकालय मे वह पुस्तकें समय-समय पर लाता था और पढता था। एक बार उस पुस्तकालय ने एक ऐसी किताब वह पढने के लिए लाया, जिसमें कई नक्शे विविध मशीनरी के दिये गये थे, कई चित्र भी थे। वह किताब पुस्तकालय मे अभी ताजी ही आई थी। विद्यार्थी मे मानवता लुप्त होने लगी, दानवता नाचने लगी। उसने सोचा—"इतने बडे पुस्तकालय मे इतनी पुस्तको मे से अगर इस पुस्तक मे से कुछ चित्र फाड लिए जायँ, कुछ नक्शे रख लिए जायँ और पुस्तक वापिस लौटा दी जाय तो कौन देखता है? क्या पता लगता है?" उसके लालच ने साकार रूप धारण कर लिया। उसने उस पुस्तक मे से कुछ चित्र व नक्शे फाडकर पुस्तकालय को वापिस पुस्तक जमा करा दी। पुस्तकालयाध्यक्ष ने भारतीय के विश्वास पर बिना देखे ही पुस्तक जमा करके अलमारी मे रख दी। एक दो दिन बाद ही एक स्थानीय विद्यार्थी उसी पुस्तक को लेने आया। अलमारी से पुस्तक निकालते ही उक्त विद्यार्थी ने पुस्तक को उलट पलट कर देखा तो उसे वे चित्र व नक्शे नहीं दिखाई दिये। उसने पुस्तकालयाध्यक्ष से पूछताछ की। उसने कहा—"इस पुस्तक को आए अभी थोडे ही दिन हुए है, और दो दिन पहले ही एक भारतीय विद्यार्थी इस पुस्तक को लौटा गया है। हो न हो, इसमे से उसीने चित्र चुराये हो। किताब बिलकुल नई है, और तो कोई ले गया ही नही।" उनका सन्देह पक्का हो गया। उक्त भारतीय पर से उनका विश्वास उठ गया और उन्होने पुस्तकालय के द्वार पर ही तख्ती लगा दी—"भारतीय के लिए प्रवेश निषिद्ध है।" गलती की एक भारतीय ने, प्रवेश बन्द हुआ सारे भारतीयो का और बदनाम हुआ सारा भारत देश।

क्या मानवता विहीन इस कृत्य के कारण सारा भारत बदनाम नहा हुआ ? आज सारा ससार चौकन्ना होगया है । वह आपके ऊपरी लवला साइनबोर्डों और ट्रेडमार्कों को नहा देखता, आप किस धम क है किस राष्ट्र के हैं किस खानदान क ट किम जाति क ह -किम परम्परा क ह, इम देख कर वह यह निणय नही करता कि आप भल आदमी हैं ! वह तो आपकी मानवता को परख कर ही आपको अच्छा या बुरा कहगा, आपकी मनुष्यता की जाच पडताल कर क ही आपक विषय मे भले बुरे का निणय करगा । वहा जातिपाँति क बल, सम्प्रदाय के ट्रेडमार्क, या तिलक छापा के सा"नवाड काम नही आएग, इनसे आपकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं हागी । आपक घर मे सम्पत्ति अठखेलियाँ कर रही है, आपके दिमाग म किताबा का बहुत ज्ञान ठूसा हुआ है आपके चहर पर स्नाफी पाउडर और क्रीम पोता हुआ है आपके शरीर पर रगविरग चमकील, भडकीले सूक्ष्म सुन्दर कपडे शोभायमान हारह हैं, आपकी सेवा म हजारा नौकर भागदौड कर रहे हैं आपके कल कारखाने दनादन दौड लगा रहे है आपकी तिजोरी मे चाँदी-भवानी की छनाछन हारही है आपक यहाँ मिलन वाला का ताँता लगा रहता है, आप पयू पणपव पर तपस्याग्रा का ठाठ लगा दत हैं आप घटा स्तोत्रा की झडियाँ लगान रहते हैं, आप प्रतिदिन पूजापाठ, नित्यनियम और क्रियाकाण्ड करन से नहीं चूकते, किन्तु मानवता का नापतौल इन चीजा स नही होगा मानवता इन चीजों म नहीं तौली जासकगी । मानवता को तोलने के लिए तो दूसरे ही बांट काम आएगे । न तो राजनीतिज्ञता से मानवता परखी जाती है न भाषणों न म नतृत्व स और न किसी सम्प्रदाय के अनुयायित्व म ।

मानवता की कसौटी मानव की मानवता का व्यवहार ही बन सकता है। मानलो, एक आदमी सत्तर रुपया मासिक कमाता है तो वर्ष भर की उसकी कुल कमाई ८४०) रु० होगी और यदि वह ६० वर्ष तक निरतर इसी क्रम से कमाता रहे तो ५०४००) रुपया कमा सकेगा। यह उसके सारे जीवन भर की पूजी है, जब कि एक हीरे की कीमत एक लाख रुपये तक की होसकती है। अब आप बताइए कि उस मनुष्य की कीमत अधिक है या हीरे की ? किन्तु जरा ठडे दिल से प्रश्न के दूसरे पहलू पर सोचेंगे तो पता लग जायगा कि मानव की कीमत हीरे से ज्यादा है। माना कि हीरा लाख रुपयो का है, फिर भी हीरे को खरीदने वाला, उसकी परख और कीमत करने वाला तो मानव ही है न ? आप भूल न जाएँ, हीरे से हीरे का पारखी बडा होता है और यदि मानव में मानवता की चमक आजाय तो वह हीरे की चमक को भी फीकी कर सकता है। मानवता की चमक से ही मानव की अधिक कीमत है, अन्यथा, मानव शरीर की ही, अकेले की, कुछ कीमत होती तो लोग मुर्दाशरीर को क्यो नही बेच लेते, या घर मे रख लेते !

पर आज के अधिकाश पामर लोग मानवता की अपेक्षा सिक्के को ही ज्यादा महत्त्व देते है। जहाँ एक ओर दुखी मानव कराह रहा हो और पास ही एक सिक्का पडा हो तो उनका प्रथम हाथ सिक्के की ओर ही बढेगा, उनका मन मानव को नही, सिक्के को ही छाती से लगाने को होगा।

एक दिन शौच के लिए जाते हुए देखा कि सडक के किनारे धूप मे एक आदमी फटे हाल, बेकस होकर पडा है, वह केवल

हड्डियां का ढांचा मात्र रह गया है और मिनटों का महमान है। सडक का सुहाग अचल था। काफी लोग उस पर आ-जा रहे थे। वे उसकी तरफ देखते और आगे बढ जाते। उसी सडक पर धूल उडाती हुई एक मोटर जा रही थी। वह सहमा जाते-जाते रुकी। उसमें से दो व्यक्ति नीचे उतरे और नीचे कुछ देखते हुए पीछे की ओर गये। आखिर कुछ दूर चलने पर उन्हें एक रुपया पडा हुआ मिला वह शायद उन्हें मोटर से जाते हुए दिखा होगा। उसके लिए ही वे शायद मोटर से उतरे होगे। लेकिन उस आदमी की ओर उन्होंने देखकर भी नहीं देखा। उनकी दृष्टि में सिक्के की कीमत आदमी से ज्यादा थी।

बस यही मानवता की हार हो गई और पशुता जीत गई। जहाँ बडे से बडे सकट मे पडने पर भी मानवता न डगमगाये, दानवता या पशुता की शरण न ली जाय वहीं सच्ची मानवता समझना चाहिये।

पजाब के सीमावर्ती एक शहर की घटना है। वहाँ एक हिन्दू धर्मी डॉक्टर वर्षों से रहता था, अपनी प्राइवेट प्रेक्टिस करता था। वे दिन हिन्दू मुसलमानों के तूफानी दगो के दिन थे। हिन्दू मुसलमान मानवता को तिलाञ्जलि देकर मजहब, जाति और देश के नाम पर आपस मे खून की होली खेल रहे थे। कुछ मन चले गुण्डों को भी अपनी दानवता दिखाने का मौका मिला। उन्होंने भी इस मौके से लूटने खसोटने का लाभ उठाने की सोची। जान माल की बर्बादी करने की ठानी। वे सीधे डाक्टर के घर पर आये और हमला बोल दिया। डॉक्टर की कार जला दी, सम्पत्ति लूट ली पत्नी और लडकी

को जान से मार डाला और अब वे चले डॉक्टर साहब के शफाखाने मे, जहा डॉक्टर साहब बैठे हुए थे। उन्होंने आते ही धड़ाधड़ आलमारियों पर पत्थरों से प्रहार किया। काच का स्वभाव होता है कि वह प्रहार करने वाले की ओर उछलता है। फलत उन गुण्डो के शरीर पर काच के टुकड़े उछल-उछल कर लग रहे थे, जिससे वे ज़ख्मी हो गए, और घायल होकर सब के सब वही गिर पडे। डॉक्टर साहब ने अपनी मानवता नहीं खोई, शान्त भाव से बैठे यह दृश्य देख रहे थे। विरोधी और प्राण घातक गुण्डो को घायल देखकर डॉक्टर के हृदय के किसी भी कोने मे बदला लेने की भावना नहीं उमडी, उल्टे, उसके रग-रग मे मानवता अगडाई लेने लगी। वह उठा और घायल आदमियो से प्रेम पूर्वक कहने लगा—'मेरे प्यारे भाईयो, आप घबराओ मत, जो हुआ सो हुआ, मै अभी इन काच के टुकडो को निकाल कर मरहम पट्टी कर देता हू।" उस मानवता प्रेमी डॉक्टर ने अपने चिकित्सा शस्त्र से उनके शरीर पर लगे हुए एक-एक टुकडे को निकाला, घाव धोकर मरहम पट्टी की। यह मरहम पट्टी उनके बुझे हुए दिलो पर भी मरहम पट्टी का काम कर रही थी।

क्या आप भी उस डॉक्टर की तरह किसी मानव के टूटे हुए, बुझे हुए, पीडित, शोपित और त्रस्त दिल पर मरहमपट्टी का काम करते है ? क्या ठड से ठिठुरते हुए मानव को देखकर आपके पास कपडा आवश्यकता से अधिक होने पर भी दे देने का मन होता है ? क्या किसी भी गरीब विधवा बहिन को अभाव से पीडित होते देख कर उसकी यथाशक्ति मदद करने और निरभिमानतापूर्वक उसके लिए कुछ कर देने को जी मचलता है ?, क्या किसी अनाथ, अपाहिज, असहाय और

अभावपीड़ित व्यक्ति के दुःखदर्द मिटाने के लिए आपकी भावनाएँ उमड़ती हैं? यदि ऐसा है तो आपकी धमनियों में अभी मानवता के सुसंस्कार दौड़ रहे हैं। जिसकी नसों में मानवता का स्पन्दन होता रहता है वही व्यक्ति सच्चा मानव कहलाने योग्य है।

एक गरीब परिवार था। उसके पालन पोषण करने वाला एक ही व्यक्ति था। वह दिन भर इतना श्रम करता था कि जिससे परिवार के सदस्यों का पोषण हो जाय। एक दिन अपर्याप्त भोजन मिला, दूसरे दिन भी जीभर श्रम न कर सकने के कारण भूखा रहना पड़ा, तीसरे दिन भी यही हाल रहा। अन्त में क्षुधा से पीड़ित होकर वह बीमार हो गया। माता चिन्तातुर हो गई। पड़ौसी आये। किसी ने कहा—'इसे डाक्टर को दिखलाया जाय', किसी ने कहा—'इसे बादाम का हलुआ खिलाया जाय', किसी ने कहा—'इसे खीर खिलाई जाय'। किन्तु किसी ने यह नहीं कहा कि 'लो, मैं यह सामग्री लाता हूँ'। सब की मानवता मौन थी। माँ की ममता माँ ही जानती है। उसके पास गले में एक सोने की पत्ती थी। वह उसे लेकर एक डाक्टर के पास पहुँची और कहा—'डॉक्टर साहब, मेरा इकलौता पुत्र है उसके बिना मेरा गरीब परिवार भूखा मर जायगा। हम अनाथ हो जायेंगे। कृपा कर यह लीजिए और उसे बचाइए।' डॉक्टर ने कहा—'माता! चलो मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।' वह उसके साथ उस कुटिया में पहुँचा जहाँ उसका प्यारा लाल सोया हुआ था। डाक्टर ने उसे अच्छी तरह से देखा और वह इसी निर्णय पर पहुँचा कि इसे अन्य कोई रोग नहीं गरीबी ही इसका सबसे बड़ा रोग है। उसने जेब में हाथ डाला और १३००) रु० के नोट निकाल कर उसे देते हुए कहा कि 'न यही

तेरे रोग की असली दवा है ।" नोटो को देखते ही वह उठ वैठा । मा से कुछ खाने को मगाया और कुछ समय में स्वस्थ होकर उसने व्यापार किया । व्यापार चमक उठा, उसने एक लाख रुपया कमाया । उसमें से ५० हजार रुपये लेकर वह डॉक्टर के पास गया और वोला– "आपने मेरे रोग का सही इलाज किया है । आप मानव नही, महामानव है, लीजिए यह मेरी तुच्छ भेट ।" डॉक्टर मे असीम मानवता ही नही, देवत्व छलक रहा था । उसने ५० हजार रु० के नोटो को लौटाते हुए कहा– "भाई, यह लेजाओ, मुझे नही चाहिये । मुझे अपनी मानवता की सौदेवाजी नहीं करनी है ।" आखिर उस भाई ने डॉक्टर साहव की फीस के और १७००) रुपये जो उन्होने दिये थे, वे वहुत कुछ अनुनय विनय करके पुन उन्हे दिये ।

सचमुच, ऐसे मानवता के धनी हमारे देश में और विश्व के विशाल क्षेत्र मे कितने है ? फिर भी उनकी झाकी हमे कही कही देखने को मिलती है ।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध महाकवि निराला, जिनका पूरा नाम सूर्यकात त्रिपाठी है, वे दीन दुखी को देखकर अपना सर्वस्व देते हुए नहीं हिचकिचाते । एक वार निरालाजी को महादेवी वर्मा ने ठड से ठिठुरते देखा । महादेवी वर्मा का हृदय भर आया । वे तुरन्त समझ गईं कि इन्होने अपना गर्म कोट किसी गरीव को दे डाला है । अत. महादेवीजी एक नया गर्म कोट सिला कर लाई और कहा— "देखिये, यह कोट आपका नही, मेरा है, मैने सिर्फ आपके शरीर की रक्षा के लिए करवाया है, इसलिए मेरी अनुमति विना आप इस कोट का अन्य उपयोग नही कीजियेगा । थोडे दिनो वाद निरालाजी महादेवी की दृष्टि

स दूर रहन लग। पर महादेवी जी की करुणामयी दृष्टि से दर क्या था ? सामने स अदृश्य होते ही निरालाजी को देखा। शीघ्र ही पूछा— आज आपने कोट क्या नही पहना ? पहले ता उन्होने गाल माल उत्तर देने का प्रयत्न किया, परन्तु अनुभवी आँखो ने सारी परिस्थिति समझली। निरालाजी भी समझ गये। उन्होने सारी परिस्थिति को खोल कर कहा कि कुछ दिन पहले एक नग्न भिखारी ठड स काप रहा था। मुझे लगा— मुझ स ज्यादा उस कोट की जरूरत है। अत उस नग्न व्यक्ति को कोट ओढा कर म चला आया हूँ।

यह है मानवता का मूर्तिमान दृश्य ! जब मानव हृदय म मानवता अपना स्थायी निवास करलेगी, मानवता को प्रतिक्षण, प्रतिपल मनुष्य भूलेगा नही, मानव मनमे मानवता का अन्तर्नाद गूज उठेगा तभी जगत् की सुख शान्ति मे वृद्धि होगी, तभी दु खदारिद्रय के बादल फट जायेंगे और सुख का सूय चमकने लगेगा तभी मानव को अष्टसिद्धि और नौ निधि की प्राप्ति का सा आनन्द आयगा, राष्ट्रो, जातियो धर्मों, और सम्प्रदायो म निर्माण का स्वप्न साकार हो उठेगा।

धर्म को परखो, मानव !

भारतवर्ष अतीत काल से ही जन-जन के मन मन का आकर्षण केन्द्र रहा है। किन्तु इस आकर्षण का कारण क्या अनन्त आकाश को नापने वाली हिमाच्छादित हिमालय की उच्च चोटियाँ है ? अथवा उत्ताल तरगो से और मेघगम्भीर ध्वनि से मानव मन को आह्लादित करने वाला समुद्र का गर्जन और तर्जन है ? या हँसती और मुस्कराती हुई प्रकृति नटी की सौन्दर्य सुषमा है ? या रेगिस्तान की चाँदी के समान चमकती हुई रेती है ? या कल-कल छल छल बहती हुई सरिता की सरस धाराएँ है ? या सोने चाँदी, हीरे जवाहरात की खानें है ? अथवा पेट्रोल या तेल के स्रोत हैं ? यह एक ज्वलन्त प्रश्न है, जिसका उत्तर आपको देना है । यदि आपने इस बाह्य वैभव से ही भारतवर्ष का मूल्याङ्कन किया तो मुझे कहना चाहिए कि आपने भारतवर्ष की आत्मा को नही पहचाना, आपने केवल शरीर का, या भौतिक पदार्थो का ही अवलोकन किया है, उसे ही महत्त्व दिया है ।

भारतवर्ष, जिसे ससार के आध्यात्मिक गुरु होने का महत्त्व पूर्ण गौरव प्राप्त हुआ है, और स्वर्ग मे रहने वाले देव जो यहाँ की गौरव गरिमा के गीत गाते है, गीत ही नही, किन्तु यहाँ जन्म लेने के लिए तरसते है, छटपटाते है; सो क्या इस

वाह्य वभव म कारण ही ? वाह्य वभव की छटा तो आपको ऐेनिया व श्रय भूभागा तथा श्रय महाद्वीपा अमरिका यूरोप आदि मे भी दृष्टिगोचर होसक्ती है । वस्तुत इस वाह्य वभव के कारण ही भारतवष का महत्त्व नही है ।

भारतवष का महत्त्व है, धमप्रधान हाने क कारण । यहाँ की सस्कृति और सभ्यता के कण-कण मे धम समाया हुआ है । भारतवष का स्मरण करत ही हम धम का स्मरण हो आता है । यदि किसी पाश्चात्य विचारक के सामन काई योजना रखी जाय ता वह यही कहेगा कि क्या इस योजना स मेरी आय म वृद्धि होगी ? किन्तु वही योजना किसी भारतीय विचारक के सामन रखी जाय तो वह यही प्रश्न करेगा कि क्या यह याजना मेरे धम के अनुकूल है, या यह योजना धम म सम्बधित है ? यदि किसी योजना मे धम का पुट नही है तो वह योजना भारतीय एकाएक स्वीकार नही करेगा ।

भारतीय मानव की इसी भव्य-भावना के कारण ही हजारा धम तीथकर, धम प्रवतक और पगम्बर यहाँ पदा हुए, धम का सदश लकर हजारा धमप्रवतक यहाँ विदेशा म आए, सभी क सदेशा को, धमवचना को भारत की मिट्टी ने पचाया, अपनाया और फलने फूलने का अवकाश दिया । यही कारण है कि भारत मे हजारा धम सम्प्रदाय हैं और घर-घर म अलग-अलग धम सम्प्रदाया का खिचडी भी है एक ही घर मे पिता यदि वष्णव है तो पुत्र शव है, माता राम की उपासिका है तो पुत्री कृष्ण की, और पुत्रवधू जनधम को मानती है, तो पौत्रसाहब बौद्ध धम मतावलम्बी है । मतलब यह कि भारत म प्रत्यक घर म सभी व्यक्ति किसी न किसी धम सम्प्रदाय को मानते हागे, काई भी विना धम सम्प्रदाय का नहीं हागा ।

एक पाश्चात्य दार्शनिक ने भारत की यात्रा करने के पश्चात् यात्रा के मधुर सम्मरण लिखते हुए लिखा था—"भारतवर्ष धर्मों का चिडिया घर है। जैसे चिडिया घर मे कोई फ्रास की चिडिया है, तो कोई जर्मन की, तो कोई रूस की है, तो कोई अमेरीका की, कोई इग्लैण्ड की है, तो कोई अरब की, कोई अफगानिस्तान की है, तो कोई पाकिस्तान की। जैसे रगबिरगे रगो की चिडिया चिड़ियाघर मे होती है, वैसे ही नाना रगढग के, नाना तरह के धर्म भारतवर्ष मे है। कोई पूजा को महत्त्व देता है तो कोई स्वाध्याय को, कोई छापातिलक को, तो कोई दाढी चोटी को, कोई रगबिरगे वस्त्रो को, तो कोई श्वेत काले या गेरुएँ वस्त्रो को ही।

हाँ तो, भारतवर्ष धर्मों का सगम स्थल है। यहाँ इस्लाम, ईसाई, सिक्ख, पारसी, जैन, बौद्ध और वैष्णव आदि अनेक धर्मों को मानने वाले हैं, परन्तु यहाँ के सभी धर्मवालो ने साध्य मोक्ष को माना है, और उसका साधन धर्म को।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि जो वस्तु जितनी अधिक सरल और सुप्रसिद्ध होती है, उसकी व्याख्या उतनी ही अधिक जटिल और पेचीदा होती है। इन्सान दिनरात धर्म-धर्म पुकारता है, किन्तु धर्म क्या है? अधर्म क्या है? धर्म किसे कहना चाहिए? और अधर्म किसे? इसे बहुत ही कम समझा है। विश्व के प्रागण में जितने भी दार्शनिक आए हैं, विचारक आए है, व्याख्याकार आए हैं, धर्मसस्थापक या धर्मतीर्थंकर आए हैं, उन सभी ने धर्मशब्द पर विभिन्न दृष्टिकोणो से चिन्तन किया है, मनन किया है, जिसका परिणाम यह हुआ कि ससार मे धर्मशब्द की अनेक परिभाषाएँ बन गई है।

लाड मोर्ले न एक स्थान पर कहा है कि धम की लगभग १०००० व्याख्याएँ की गई हैं फिरभी उनम सभी धर्मो का समावेश नहीं होता । आखिर जन, बौद्ध, आदि भारतवष के प्रसिद्ध धम उन व्याख्याओ स बाहर ही रह जाते है । इस प्रकार धमशब्द का अनेक अर्थों मे प्रयोग हुआ है विभिन्न व्याख्याएँ हुई है भिन्न भिन्न परम्पराएँ विविध स्थाना पर धम शब्द के अनेक अथ करती हैं, ऐसा कोई सव सम्मत लक्षण नहा है, जो ससार के सभी लोगा को माय हो ।

कोई कहता है– 'स्नान करना धम है ।' कोई कहता है– लम्बी चोटी रखना धम है, कोई कहता है– किसी ब्राह्मण को एकाध धेना दे देना धम है, कोई कहता है– तिलक छापे लगाना धम है कोई विष्णुपूजा मे धम मानता है, तो कोई जिनपूजा मे, तो कोई गिरजाघर म जाकर प्राथना करने म धम मानता है, तो दूसरा मस्जिद म जाकर नमाज पढने म । कोई धम स्थान मे जाकर कुछ स्तोत्र या पाठ पढ़ लेने मे धम मानता है, तो कोई गीता पाठ करने मे धम मानता है। कोई मन चला मास खाने म, बकरा का बलि चढाने मे और देवी के आगे खून की होली खेलने म धम का रग जमाता है तो कोई प्रमाद सेने मे, शराब चढाने मे और पितरा क लिए तपण करने म व ब्राह्मणा के पट मे लड्डू डालने मे धम मानता है। कोई कहता है किसी दूसरी जाति वाले के चोके म घुस जाने स धर्म जाता रहता कोई कहता है काफिर के साथ बात करने म धम उड जाता है। साधारण आदमी तो चक्कर मे पड़ जाता है कि आखिर धम क्या बला है ? साधारणा की बात तो दूर रही बड़े बडे मनीषी तक धम का निणय नहीं कर सकते हैं। वे भी यह कहते हैं —

तर्कोऽप्रतिष्ठ श्रुतयो विभिन्ना
नैको मुनिर्यस्य वच प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्व निहित गुहाया
महाजनो येन गत स पन्था ।

तर्क से धर्म का निर्णय करें तो उससे भी प्रबल तर्क पहले के तर्क को काट देता है । तर्क वह हथियार है, जो आपस मे ही लडते भिडते रहजाते है । तर्क बिना पैदे का लोटा है, उससे धर्म का निर्णय नही होता । श्रुतियो मे भी परस्पर विरोधी वचन मिलते है । एक श्रुति एक राग अलापती है, दूसरी उससे विरोधी अलग ही स्वर निकालती है । इस प्रकार श्रुतियो से भी धर्म का सही निर्णय नहीं हो पाता । और न स्मृतियो से ही कोई यथार्थ निर्णय हो सकता है, क्यो कि स्मृतियाँ भी भिन्नभिन्न देश, काल, और परिस्थितियो मे बनी हैं, इसलिए उनमें भी परस्पर विरोधी वाक्य मिलते है । एक किसी चीज का समर्थन करती है तो दूसरी स्मृति उसका खण्डन करती है । इसलिए स्मृतियाँ भी विवादास्पद होने के कारण धर्म के विषय मे कोई निर्णय नही दे पातीं । किसी एक मुनि का वचन भी प्रामाणिक नही माना जासकता, क्यो कि वे भी अपने-अपने युग की बात कह गये । अपने अपने युग मे समाज की दशा देख कर उन्होने धार्मिक विधि विधान बताए । एक का बताया हुआ धार्मिक विधान दूसरे से मिलता नही । इसलिए मुनियो के कथन से भी धर्म का सही फैसला नही हो पाता । तब आखिर हार कर व्यासजी को कहना पडा— भाई, धर्म का तत्त्व तो बुद्धि की गुफा मे निहित है, जहाँ अन्धेरा होने से वह दीखता ही नहीं, इसलिए जिस

माग स महापुरुष गये हा वही माग, धम का माग समझना चाहिए ।

हा तो ! यह भी कोई वास्तविक निणय नही है। जिधर महाजन — महापुरुष के कदम बढें, उमी तरफ चलना भडो की तरह अपनी बुद्धि के ताला लगा कर चलना तो हास्यास्पद है । भगवान् महावीर जसे तत्त्वचिंतक ने तो धम तत्त्व के निणय क लिए सशयास्पद स्थिति मे पडन के बजाय यह निणय दिया —

'पन्नासमिक्खए धम्मतत्त तत्तविणिच्छिय'

'वास्तविकता की कसौटी पर परखे हुए धमतत्त्व की अपनी सदसद् विवेकशालिनी बुद्धि से ही समीक्षा की जा सकती है। अब हमे यह भी विचार कर लेना होगा कि पाश्चात्य और पौर्वात्य दाशनिका, महामानवा और तीर्थंकरा ने धर्म शब्द की क्या परिभाषा की है ? सवप्रथम धम के व्युत्पत्तिमूलक अथ को ले तो 'धारणाद् धम जो धारण किया जाए अथवा 'दुगतौ प्रपतन्त मात्मान धारयतीति धम दुर्गति मे पडते हुए आत्मा का जो धारण करके रखता है वह धम है, इस प्रकार के दो अथ निकलते है । उन दोना अर्थों का तात्पर्याथ यह हुआ कि ऐस नियम ऐस सद्गुण ऐस रीति रिवाज या ऐसे सत्कम ऐसी नीति और ऐस आचरण जो दुगति यानी दु ख म पडते हुए आत्मा को बचावें और सुख की ओर ल जासकें वह धम है । इसी दृष्टि को लेकर वैशेषिक दशनकार ने धम का अथ किया है—

'यतोऽभ्युदय नि श्रयस सिद्धि स धम'

जिस बात से, जिस आचरण स या नीति नियम स मानव समाज की इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण की सिद्धि हो

वह धर्म है।' स्वर्गीय किशोरलाल मश्रुवाला के शब्दो में कहे तो—'जिससे समाज का धारण पोषण, रक्षण और सत्त्वसशोधन हो सके, वह धर्म है। और अधिक स्पष्ट शब्दो मे कहें तो 'विश्व में वास्तविक सुखो की वृद्धि जिससे हो सके वह धर्म है।' यह अर्थ फलित होता है। जैनदर्शन के महान् आचार्य कुन्दकुन्द ने 'वत्थु सहावो धम्मो' वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा है। प्रत्येक वस्तु का अपना-अपना स्वतत्र स्वभाव होता है, वही स्वभाव उस वस्तु का धर्म माना जाता है। जैसे अग्नि का स्वभाव उष्णता है, पानी का स्वभाव शीतलता है। दार्शनिक दृष्टि से यहाँ वस्तु के गुण धर्म को, स्वभाव को धर्म कहा गया, किन्तु विश्व के मानव समाज की दृष्टि से, आध्यात्मिक दृष्टि से इस परिभाषा के अनुसार धर्म का अर्थ होगा—'आत्मा का विश्व मानव समाज का असली स्वभाव मे रहना।' तात्पर्य यह है कि मानव समाज में सुव्यवस्था रहने से और उसके विचारशोधन, आचारशोधन और वृत्तिशोधन होते रहने से ही समाज अपने असली स्वभाव मे टिका रह सकता है, और उसी से ही सुखवृद्धि, कल्याण, या अन्य-सिद्धियाँ हो सकती है।

आग्ल भाषा में धर्म को 'रिलीजन' करते है। रि=पीछे, लीजन=बाधना। अर्थात् सद्विचारो में आत्मा को बाधना, उसे अनुबन्ध भी कह सकते है। जहाँ आत्मा सद्विचारो से बन्ध जाता है, वहाँ समाज में अव्यवस्था हो नहीं सकती, दु:ख बढ नहीं सकता, लड़ाई-झगडे हो नहीं सकते। काट के शब्दो में 'अपने समस्त कर्त्तव्यो को ईश्वरीय आदेश समझना ही धर्म है। हेगल की धारणा के अनुसार 'सीमित मस्तिष्क के अन्दर रहने वाले अपने असीम स्वभाव का ज्ञान धर्म है।' मेयर्स ने धर्म की व्याख्या की है—'मानव आत्मा का ब्रह्माण्ड विषयक स्वस्थ और साधारण उत्तर।'

मनोविज्ञानशास्त्री आमस ने धर्म की परिभाषा की—'ईश्वर से प्रेम करना।' मक्टगार्ट ने धर्म का लक्षण किया है—चित्त का वह भाव जिसके द्वारा हम विश्व के साथ एक प्रकार के मेल का अनुभव करते हैं।' जेम्स फ्रेजर ने धर्म का विलक्षण ही अर्थ किया है। उसके शब्दों में 'धर्म, मानव से ऊँची गिनी जाने वाली उन शक्तियों की आराधना है जो प्राकृतिक व्यवस्था व मानवजीवन का मार्गदर्शन व नियंत्रण करने वाली मानी जाती है।

इन सब लक्षणों पर विचार करने से यही फलित होता है कि धर्म *मानवमात्र* के लिए ही नहीं ? किन्तु प्राणी मात्र के अभ्युदय के लिए, सुख वृद्धि के लिए, धारण पोषण के लिए *एक सुव्यवस्था का नाम है।*

धर्म मानव जीवन को सुखी, स्वस्थ, और शान्त बनाने के लिए एक वरदान लेकर पृथ्वी पर अवतरित हुआ है। धर्म हृदय में घुसी हुई दानवीय वृत्ति को निकालते हैं और मानवता की पुण्य प्रतिष्ठा करते हैं। दूसरे शब्दों में कहूँ तो धर्म दानव को मानव बनाता है और मानव को देव। धर्म व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने वाला है। वह व्यक्ति समाज और समष्टि की मानसिक बीमारियों की, आत्मिकविकारों की चिकित्सा करने वाला है। इसके कारण मानव मर्त्य जगत् में सुखों का स्वर्ग उतार सकता है इसके कारण मानव विश्व के सभी प्राणियों के साथ अपना अनुबंध जोड़ कर कर्तव्य पालन कर सकता है, इसके कारण विश्व की सुंदर व्यवस्थिति हो सकती है इसके कारण समाज में सुख शांति की लहरें फैल सकती हैं।

महामात्य चाणक्य के शब्दों में 'सुखस्य मूल धर्म' समस्त सुखों का मूल धर्म है। वह मनुष्यों के टूटते हुए हृदयों को

जोडने वाला है, विगडते हुए सम्बन्धो को स्थिर करने वाला है, विशृखलित होती हुई व्यवस्थाओ को सुशृखलित करने वाला है, पृथक् पृथक् होती हुई जीवनधारणाओ को एक ध्येय की ओर ले जाने वाला है। धर्म संसार के लिए अमृत है, मानव-जगत् के लिए आशीर्वाद रूप है, सस्कृति का निर्माता है, जीवन निर्माण मे सहायक है। धर्म की प्रवल प्रेरणा के विना मानव-जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता और सिद्धि नही मिल सकती। फिर चाहे वह राजनैतिक क्षेत्र हो, चाहे आर्थिक, चाहे सामाजिक हो अथवा सास्कृतिक, चाहे शैक्षणिक हो, चाहे साम्प्रदायिक। सर्वत्र धर्म के प्रवेश विना वास्तविक कार्य सिद्धि दुष्कर है। धर्म का जीवन के सभी क्षेत्रो मे सार्वभौम प्रवेश होने पर ही ससार में स्वर्गीय आनन्द के फव्वारे छूट सकते है, ससार स्वर्गीय सगीत की मधुरता पा सकता है।

किन्तु खेद है कि आज का मानव धर्म के असली रहस्य को भूल गया है और भूलता जा रहा है। जैसे कोई व्यक्ति जीना तो चाहता हो, लेकिन श्वास न ले, यह कैसे हो सकता है ? इसी प्रकार जो व्यक्ति, समाज या समष्टि अपने अस्तित्व को सुन्दर ढग से रखना चाहते हो, अपना जीवनयापन सुखशान्ति के साथ करना चाहते हो, वे यदि धर्मरूपी प्राण की उपेक्षा कर दें, धर्म को भूल जाँय तो क्या उनका सुखशान्ति पूर्ण अस्तित्त्व खतरे मे नही पड़ जायगा ? इसीलिए वैदिक धर्म के महान् ऋषि ने सारे ससार को सावधान करते हुए कहा :—

'धर्मो विश्वस्य जगत. प्रतिष्ठा'

धर्म सारे जगत् का प्रतिष्ठान है, आधार है, प्राण है। यदि मानव जाति में धर्म है तो उसका अस्तित्व है, धर्म नही है तो अस्तित्व में सदेह है। यदि हम धर्म को सुरक्षित रखेंगे

तो वह हमारी-मानव जाति की रक्षा करेगा और हम धम की रक्षा न करके उपेक्षा कर देंगे, धम को खतम कर दगे तो धम हमारा अस्तित्व खतम कर देगा नष्ट कर दगा । महाभारत के वनपव म इसी बात को वेदव्यासजी ने कहा है —

'धम एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षित'

इसी बात को म और अधिक स्पष्ट कर देता हूँ। मानलो, एक क्षेत्र ऐसा है, जहाँ कोई मानव धम का नाम तक नहीं जानता, धम की भावना तक उनम नहा है, धम का आचरण भी उनके जीवन मे नही है, न उन्हें धम का स्वरूप समझाने वाला कोई धार्मिक व्यक्ति भी उनके बीच म है। अब वे धम को न समझने के कारण अपने कत्तव्यो का निधारण नहीं कर सकते, अपने रीति नियम नही बना सकते, अपने पारस्परिक व्यवहार की सीमा रेखाएँ नहा खींच सकते । सभी आपस म झगडते हैं खाने पीने की चीजो के लिए आपस म छीना झपटी करते हैं, एक दूसरे को जरा-जरा-सी बात मे मार डालने का उपक्रम करते हैं, एक दूसर की चीजे चुरा लेते है, किसी के बीमार होने पर कोई दूसरा सेवा नहीं करता, सहायता नहीं करता कोई किसी भी स्त्री के साथ सहवास कर लता है, कोई किसी दूसरे की आवश्यकताओ पर ध्यान न दकर अपने पास अधिक स अधिक सग्रह करने का प्रयत्न करता है, न किसी को भगवान् का डर है न नरक का भय है और न स्वग का आकषण है, केवल सघष का गौरव छाया हुआ है । भला, बताइये, ऐसी सूरत म वहाँ के मानव समाज की क्या स्थिति होगी ? क्या उनका अस्तित्व सुरक्षित रह सकेगा ? क्या उनका धारण पोषण ठीक तरह से हो सकेगा ? क्या उनके मन म

की तो जड ही उखाड डालनी चाहिए । वास्तव मे, ऐसा कहने वाले लोगो की बात मे भी कुछ तथ्य है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता । परन्तु ऐसे लोग धर्म के असली स्वरूप को न पहिचान कर धर्म का मर्म न समझकर धर्मभ्रम का धर्म पथो को, सम्प्रदायो को, धर्म के नाम से चलने वाले निष्प्राण क्रियाकाण्डो को ही धर्म समझ बैठे है और उनमे पारस्परिक सघर्ष, कलह और द्वेष देखकर ही वे झट कह बैठते है, गोली मारो, इस धर्म को।

धर्म निष्प्राण क्रियाओ मे नहीं है धर्म बिना सोचे समझे भूखे-नगे रहने मे नही है धर्म किसी प्रकार की वेशभूषा मे नहीं है धर्म अमुक प्रकार के तिलक छापो मे नही है धर्म चौके चूल्हे मे नहीं है, धर्म लम्बे चौडे उपदेश मे भी नही है धर्म स्वर्ग के नाम पर हुडी लिख देने या स्वर्ग के सब्जबाग दिखाने मे नहीं है, किसी के पीछे जल मरने मे आँसू बहाने मे धर्म नहीं है धर्म बिना समझे शास्त्रो को घोटने मे नहीं है धर्म बेईमानी मे, छलप्रपञ्च से कमाकर दान देने मे नहीं है धर्म मन्दिर, मस्जिद गिरजाघर स्थानक, उपाश्रय, मठ, गुरुद्वारा या रामद्वारा आदि स्थानो मे ही नही रमा हुआ है। धर्म हृदय मे जीवन मे और सही सोचने व सही कार्य करने मे है । धर्म अहिंसा मे है, सत्याचरण मे है प्रेम मे है, न्याय मे है, सदाचार और सद्विचार मे है । धर्म अपने को जानने पहचानने और समझने मे है। धर्म सबके हित मे अपना हित समझने मे है। धर्म जिम्मेवारी और कर्त्तव्य पालन मे है। धर्म अमीरी-गरीबी, जात-पाँत साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता आदि भेदो को मिटाने मे है धर्म दीनदुखियो को गले लगाने मे है । धर्म ईमानदारी से व्यवहार करने मे है धर्म कम से कम वस्तुओ से निर्वाह करने मे है धर्म सत्य

अहिंसा पर अटल रहने मे है, धर्म जैसा कहना वैसा करके दिखाने मे है । धर्म रूढियो, अन्धविश्वासो, मिथ्याधारणाओ, कुपरम्पराओ और गलत सस्कारो को मिटाने मे है, धर्म विषम से विषम परिस्थिति मे भी नैतिकता के पालन करने मे है, धर्म मन की निर्मलता, पवित्रता और स्वतत्रता मे है, धर्म समाज मे कम से कम लेने और अधिक से अधिक देने मे है। एक वाक्य मे कहे तो धर्म—"अहिंसा सजमो तवो" है । धर्म वह विचार, वचन या आचरण है, जिससे विश्वसुखसवर्धन को क्षति न पहुँचे ।

उपर्युक्त बातो को कोई भी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र या वर्ग बुरा नही बताएगा, क्योकि ये बाते तो जीवन की मूलभूत बाते है, इनके बिना जीवन मे एक क्षण भी नही चल सकता। हाँ, यह बात जरूर है कि आजकल के अलग अलग ट्रेडमार्क लगे हुए धर्म विलक्षण ही है और इनकी पुरानी और नई करतूते देख कर घृणा पैदा होना स्वाभाविक है। इन्ही धर्मो के नाम पर, पथो व सम्प्रदायो के नाम पर लोगो को जिंदा जलाया गया है, इन्ही धर्मो के नाम पर छल, द्वेष, कलह, पाखड, बेईमानी, अन्याय, अत्याचार और व्यभिचार तक चलाया गया है, धर्म के नाम पर हजारो लाखो आदमियो को स्वर्ग की हुँडियाँ लिख कर ठगा गया है, धर्म के नाम पर आपस मे खून की होली खेली गई है, धर्म के नाम पर भोली - भाली अबलाओ का जीवन नरकमय बनाया गया है। ऐसे धर्मो से सचमुच नफरत हो सकती है। परन्तु हमे एक बात स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि जैन, बौद्ध, वैदिक, हिन्दू, इस्लाम, ईसाई आदि विशेषण लगे हुए धर्म, अहिंसा, सत्य आदि की तरह धर्म नहीं है ये तो एक प्रकार के समाज है, सघ है, सम्प्रदाय

है या तीथ है लेवल है, साम्प्रदायिक ट्रेडमाक है, घम की पागाख है, क्योकि भ० महावीर ने स्पष्ट शब्दो मे अहिंसा सयम और तप को ही धम कहा है।

इसलिए हमे तो धम से *अहिंसा–सत्यादि* सद्गुण, सवहितकारी बातें, सवकल्याण कर चीजें समझना चाहिए और उन्हीं का अनुसरण करना चाहिए। जन्म से आपको कोई भी सम्प्रदाय पथ या अमुक विशेषण वाला धम परम्परा म मिला हो, किन्तु उपयुक्त अहिंसा सत्यादि रूप धम का पालन करने मे कोई हानि नहीं है, कोई बाधा नहीं है। सत्य सत्य ही रहता है उस पर यह हिन्दू का सत्य, यह जन का सत्य या यह मुसलमान का सत्य ऐसे ट्रेडमार्क नहीं लगते। क्या अपने बेटे के प्रति मुसलमान माता के प्रेम और हिन्दू माता के प्रेम मे कोई अन्तर रहता है या उस पर कोई छाप लगी रहती है कि यह प्रेम तो घटिया है और यह प्रेम बढ़िया है ?

इसी प्रकार आप इस नवद धम का सद्गुणो का, स्वभावो का स्वकतव्या का पालन कीजिए उसे छोडिए मत।

कई महानुभावो का यह सोचना है कि धम तो परलोक की चीज है। यहाँ अमुक धम क्रिया करोगे तो परलोक मे उसका बढ़िया फल मिलेगा क्योकि धम इस लोक की चीज नहीं है। परन्तु यह एक निराभ्रम है। जो धम इस लोक के लिए फायदेमन्द नहीं, इस लोक म सुख की राह नहीं बता सकता, वह परलोक मे क्या लाभदायक होगा ? वास्तव मे धम तो इहलोक और परलोक दोनो के लिए कल्याण कर है सुख कर है। इसीलिए जन शास्त्र म धम के फल का वणन करते हुए लिखा है —

'इहलोय परलोय हियाए, सुहाए, निस्सेसाए, खमाए, अणुगामियत्ताए भवइ।'

अर्थात्—धर्म मानव जीवन के इहलोक और परलोक के हित के लिए, सुख के लिए, कल्याण के लिए, समर्थ बनाने के लिए है और यहाँ पालन किया जाने वाला धर्म परलोक में भी अनुगामी होता है।

जैसे प्रकृतिदत्त पदार्थों—सूर्य, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी आदि का सभी उपयोग कर सकते है, वैसे ही धर्म का सभी उपयोग कर सकते है। वह किसी व्यक्ति विशेष, सम्प्रदाय विशेष समाज विशेष, पथ विशेष या राष्ट्र विशेष के ठेके में बन्द नहीं है। धर्म का द्वार सब के लिए खुला है। चाहे वह किसी भी देश, वेष, जाति, परम्परा या प्रान्त का व्यक्ति क्यो न हो।

धर्म का पालन या धर्म का जीवन में व्यवहार सब समय और सब जगह किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। कई लोगो ने धर्म को उपाश्रय, मन्दिर, स्थानक, गिरजाघर, मस्जिद, गुरुद्वारा या रामद्वारा आदि स्थानो में ही बन्द कर रखा है। उससे बाहर की हवा धर्म को वे लगने नहीं देना चाहते। परन्तु यह सबसे बडी भूल है कि उपाश्रय आदि मे रहे, वहाँ तक धर्म जिन्दा रहे, और उपाश्रयादि से निकलते ही छूमंतर हो जाय, दूकान मे धर्म न रहे, ऑफिस में धर्म छिपा जाय, कार्यालय मे धर्म दुबक कर बैठ जाय, घर मे धर्म ताक मे रख दिया जाय, जीवन के किसी भी व्यवहार मे धर्म को काठ मार जाय, जीवन के राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति आदि क्षेत्रो मे धर्म पलायन कर जाय, ऐसा हो नही सकता। यह

धम का मजाक है । धम ता श्वासोच्छवास की तरह हर समय साथ रहना चाहिए और उसका हर समय पालन होना चाहिए, आचरण होना चाहिए। कोई आदमी इस बात का महन नहीं कर सकेगा कि काँटे लगत हो, वहाँ ता जूते पर मे से उतार ले और काँटे नही लगत हो वहाँ जूत पहन ल । इसी प्रकार जहा जीवन मे बेईमानी, छल, लाभ, हिंसा, आदि के कटक लगन का अन्देशा हो वहाँ धम रूपी पादत्राण उतार लेना और उपाश्रयादि जस स्थानो मे जहाँ कि काटे लगने का अदेशा न हो वहाँ वह पादत्राण पहन लेना भी क्या धम की मजाक नहीं है बहरुपियापन नहीं है ? धम का तो हर क्षण और हर जगह पालन होगा तभी वह जीवन को हराभरा बना सकेगा, दानवी वृत्तियो का हटा कर मानवी वृत्तियाँ बढ़ा सकेगा । कई लाग यह सोचा करते है और अकसर अपने कुटुम्ब क युवका और बच्चा से कहा भी करत हैं—'भाई अभी तेरा धम करने का समय नहीं है अभी ता जवानी क दिन हैं खाओ, पीओ मौज उडाओ, बुढापे म धम करना । बच्चा स भी कहा जाता है—'अभी तुम्हारे खेलन का समय है पढने लिखने का समय है धम तो फालतू समय मे किया जाता है।' ऐस लोगा की मूखता पर हसी आती है। क्या जवानी मे जीवन व्यवहार क प्रत्यक काय में, सुबह स लकर रात को सोने तक की हरएक प्रवृत्तिया म धमाचरण का ख्याल नहीं रखा जा सकता ? क्या बालका क खेल कूद म, पढ़ाई लिखाई मे धर्म का ध्यान नहा रखना चाहिए ? क्या प्रौढा की दूकानदारी म, सामाजिक व्यवहार मे तथा अन्य जीवन क क्षेत्रा मे धम का पालन नहीं करना चाहिए ? भगवान् महावीर ने तो प्रति समय धम पालन म सावधानी रखन का आदेश दिया है —

"जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ
जाविंदिया न हायति, ताव धम्म समायरे।"

"जबतक बुढापा आकर नहीं घेर लेता, जबतक बीमारी की वृद्धि नही होती, जबतक इन्द्रिया क्षीण नही होजाती, उनसे पहले धर्माचरण करलो।"

एक मनुष्य बाजार की ओर बेतहाशा दौड रहा था। किसी मनचले ने उससे पूछा—"भैया, कहाँ जा रहे हो?" उसने कहा—"मजदूरो को लाने के लिए।" "क्यो, किसलिए चाहिए मजदूर?" उसने कहा—"घर में आग लगी है, इसी समय कुआ खुदवाना है? आग को बुझाना है।" उस महाशय की बात पर प्रश्नकर्त्ता हस पड़ा और कहने लगा—"तुम्हें आग लगाने पर कुआ खुदवाने की सूझी है। पहले तुम्हारी अक्ल कहाँ चरने गई थी? इसी प्रकार संसार से विदा होते समय या सर्वस्वजराजीर्ण होजाने पर धर्म करने का सोचना है। धर्म के लिए तो प्रति क्षण ही सोचते रहना चाहिए। नीतिकार की भाषा में—

"गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्'

"मानो मौत ने आकार चोटी पकड़ रखी है, ऐसा सोचकर प्रतिक्षण धर्माचरण करे।'

तुगिया नगरी मे एक आचार्य चातुर्मासार्थ जैन श्मशान मे से होकर पधारे। श्मशान में जगह-जगह शिला-लेख लगे हुए थे। उन पर लिखा हुआ था—"अमुक पाच वर्ष का मरा, अमुक चार वर्ष का, तो अमुक तीन वर्ष का मरा।" आचार्य ने आश्चर्यमुद्रा में श्रावको से पूछा—"यह कैसे? क्या तुम्हारे यहाँ सभी बाल्यकाल मे ही मर जाते है?" श्रावको ने स्पष्टीकरण करते

कहा— "महाराज, हमारे यहां श्मशान में मृतक की आयु नहीं लिखी जाती यहीं लिखा जाता है कि इसने कितने वर्ष धर्म ध्यान किया। और जो जितना धर्म ध्यान करता है उसका कुल हिसाब धर्म कार्यालय में रहता है। हम कुल टोटल मिलाकर मृतक के नाम के शिलालेख में लिखवा देते हैं। आचार्य ने प्रसन्नता प्रगट करते हुए कहा— वाह भाई वाह! यह तो बड़ी प्रेरणादायक चीज़ है।' इससे प्रत्येक व्यक्ति को यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि ज़िन्दगी में जो जितने वर्ष तक लगातार धर्माचरण (धर्म का जीवन व्यवहार में अमल) करता है, उसकी असली आयु उतने ही साल की समझनी चाहिए बाकी समय तो निरर्थक गया, समझना चाहिए।

कई विशेषण लगे हुए धर्मों ने भय और लोभ पर धर्मों को टिकाए रखा है यह ठीक नहीं है। जो धर्म स्वर्ग का प्रलोभन और नरक के भय बताकर मनुष्य को प्रेरणा देने वाले हैं, उनकी नींव कच्ची है, वे तेज की एक आंधी के झोंके से धराशायी होजाने वाले हैं उनकी बुनियाद अंधश्रद्धा की बालू पर टिकी हुई है उसमें स्थायित्व नहीं है। जहाँ मानव में स्वर्ग का लाभ और नरक का डर हटा कि वह धर्म को छुएगा नहीं। आजकल के कई युवकों की यही दशा हो रही है, उनकी श्रद्धा धीरे धीरे डावांडोल होती जा रही है। उसमें उनका ही एकान्त दोष नहीं है उन्हें धर्म का स्वरूप ठीक ढंग से समझाया नहीं गया। केवल अंध श्रद्धा के बल पर भय और प्रलोभन के सहारे उनके दिलदिमाग में धर्म का ठूंसा गया है। वह धर्म मस्तिष्क प्रेरित या विवेक प्रेरित न होने से अब उनके दिलदिमाग से निकल रहा है। अतः इस बुद्धिवादी युग में भय और प्रलोभन के आधार पर धर्म को न

ठसाकर, कर्तव्य, विवेक, समझदारी पूर्वक धर्म का स्वरूप समझाया जाना चाहिए, और विशेषत प्रत्यक्ष आचरण करके बताना चाहिए, तभी धर्म तत्व जीवन मे उतर सकेगा । दूसरी बात— आज के बुद्धिवादी युग मे विज्ञान ने एक से एक बढकर नये-नये आविष्कारो को हमारे सामने रखकर ससार को चकित कर दिया है, मानो सृष्टि को अत्यन्त निकट लाकर खड़ा कर दिया है, ऐसे समय मे धर्म अगर विज्ञान को एकान्त बुरा और हेय बतलाकर उसका विरोध करता रहे तो यह उसकी अक्षमता ही समझी जायगी । बल्कि धर्म मे तो यह ताकत है कि वह प्रत्येक क्षेत्र मे अपना मार्गदर्शन कर सकता है, तब फिर वैज्ञानिक क्षेत्र मे प्रेरणा देने से क्यो कतराएगा ? विज्ञान के साथ धर्म ने सगति नही बिठाई, विज्ञान को धर्म ने प्रेरणा नहीं दी तो विज्ञान उलटी दिशा मे बहने लगेगा और एक दिन धर्म के सिर पर भी चढकर हावी होजायगा, धर्म को भी भूमिसात् कर देगा। इसलिए धर्म विज्ञान को व जगत् के लिए कल्याण कर, सुखकर और शान्तिकर कैसे बने, इसकी प्रेरणा दे । विज्ञान अपने आप मे न तो सहारक है और न तारक । उसका प्रयोग करने वाले की बुद्धि पर वह तो निर्भर है । यदि धर्म विज्ञान के प्रयोगकर्ताओ की बुद्धि धर्म की ओर, जगत् हित की ओर मोड दे तो ससार स्वर्गोपम बन सकता है । जैसे कि महर्षि वेदव्यास ने कहा था :—

'धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानाम्'

'सर्वथा सतत उन्नति चाहने वालो, तुम्हारी बुद्धि धर्म मे लगी रहे। धर्म का जो काम दर्शन करता आया है वही काम विज्ञान करेगा । दर्शन और विज्ञान दोनो का काम विश्लेषण

करने का है, सत्य को विश्व के सामने रखने का है । इससे हमे घबराना क्या चाहिए ?

कई विचारक लोग कर्त्तव्य, फर्ज, ड्यूटी आदि अर्थों मे धर्म का लेते हैं। वे कहते है कि अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करना धर्म है अपना फर्ज अदा करना धर्म है अपनी ड्यूटी बजाना धर्म है । जैसे क्षत्रियों का कर्त्तव्य रक्षा करना, वैश्यों का वाणिज्य ब्राह्मणों का अध्ययन अध्यापन, शूद्रों का सेवा करना कर्त्तव्य है । वकीलों का वकालात करना, डाक्टरों का चिकित्सा करना, न्यायाधीशों का न्याय करना और मन्त्रियों का राज्य चलाना कर्त्तव्य है। परन्तु धर्म का यह अर्थ बहुत ही संकुचित है। कर्त्तव्य शब्द से धर्म शब्द काफी विशाल है। कर्त्तव्य शब्द से त्याग सूचित नही होता । यहाँ जितना देना है उतना लेना है। डाक्टर ने दवा और सलाह दी, उसने पैसे मरीज से या सरकार से लेलिये । यहाँ तक तो बराबर का सौदा है बशर्ते कि वह डाक्टर ईमानदारी पूर्वक उतनी ही दवा और सलाह रोगी को दे देता हो, जितना उसे सरकार से या रोगी से मिलता है । यह नीति कहलाई, धर्म नहीं कहलाया । धर्म में तो कम से कम लेकर या बिलकुल न लेकर बदले में निःस्वार्थ भाव से ज्यादा से ज्यादा देना होता है। और कर्त्तव्य तो बदल भी सकता है। आज एक आदमी वकील है, कल अध्यापक का कर्त्तव्य ले सकता है । परन्तु धर्म तो हर जगह अपना स्थान रखता है, वह हर क्षेत्र में त्याग मांगता है, आचरण मांगता है।

भारतवर्ष के पूर्व ऋषियों ने चार पुरुषार्थ बताए हैं — धर्म अर्थ, काम और मोक्ष । इन चारों पुरुषार्थों में मोक्ष तो अन्तिम फल है। अर्थ और काम पुरुषार्थों में भी धर्म को साथ रखने और मर्यादा रखने की हिदायत हमारे पूर्व पुरुषों ने दी है।

उन्होने जगत् को सदेश दिया कि धर्म से ही, धर्माचरण से ही अर्थ और काम पुरुषार्थ का सेवन भली-भाति किया जा सकता है। धर्म को छोड कर एकान्त अर्थ और काम का सेवन मानव जीवन के लिए एक खतरा है। दुःख मुक्ति के लिए—मोक्ष के लिए धर्म की शरण ही एकमात्र श्रेयस्कर है। उसके बिना ससार नरक की ओर ही गति करेगा।

एक महल मे जैन संस्कृति का जगमगाता हुआ महापुरुष बैठा था। नीचे गृहागण मे ९९ करोड स्वर्णमुद्राओ का ढेर लगा हुआ था। आठ रमणियाँ उसके सामने हाथ जोडे खडी थी। अकस्मात् ५०० चोर आए। उनका लक्ष्य केवल अर्थ प्राप्ति था। जिससे प्रेरित होकर वे अर्थराशि की चमचमाहट के लिए ललचा रहे थे। उनके पास वे विद्याएँ भी थी, जिनसे वे ताले तोड डालते थे और सब को निद्रादेवी की गोद मे सुला देते थे। इधर आठो ललनाओ का लक्ष्य काम था। वे चाहती थी कि धर्म के रग मे रगा हुआ यह महान् आत्मा हमारे वशवर्ती हो जाय और सासारिक सुखो का उपभोग करे। एक ओर अर्थ का जोर था, दूसरी ओर काम का जोर। उस महान् उज्ज्वल आत्मा को न तो अर्थ का मोह फसा सका और न काम का मोह ही उन्हें घेर सका। अन्त मे विजय धर्म की होती है। व्यास के शब्दो मे—'यतो धर्म स्ततो जय' की उक्ति चरितार्थ होती है। सारा ससार उस विभूति के गुणगान गाता है। वह धर्म की शरण में आता है और अन्त मे मोक्षफल प्राप्त करता है।

आप भी दुःखमुक्ति चाहते है, विश्व को सुखमय देखना चाहते है, तो धर्म को रग-रग मे रमाइये। "अट्ठि मिज पेमाणुरागरत्ते" हड्डियो और नसो मे धर्म का प्राणवायु भरिए। धर्म आपके

किसी भी काम को रोकेगा नहीं । वह आपका खानापीना बन्द नहीं करेगा । वह तो यही कहता है कि जीवन की अन्य कलाओं में धर्म कला को मुख्य रखो आगे रखो, उसकी उपेक्षा मत करो । 'सव्वाकला धम्मकला जिणाइ' सब कलाओं में धर्मकला ही उत्कृष्ट है । अत सभी कायकलापों में, अर्थ काम और पुरुषार्थ के समय भी धर्म को नजर अंदाज न कीजिए, ओझल न कीजिए उसको आखों के तारे की तरह सामने रखिए ।

परन्तु अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि आज धर्म बेचारा अर्थ और काम के बोझ से दब गया है । उसकी आवाज फीकी पड़ गई है । उसे कोई किसी भाव पूछता तक नहीं । जहाँ देखो, वहाँ अर्थ और काम का बोल-बाला है पैसा, साधन और ऐश आराम की सर्वत्र तूती बोल रही है, धर्म बेचारा दुम दबाए बैठा है । महाभारतकार महाकवि वेदव्यास ने भी उस जमाने में अर्थ और काम का बाजार गर्म देखकर अपने जीवन में निराश होकर कहा था—

> " ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष, न च कश्चिच्छृणोति मे ।
> धर्मादर्थश्च कामश्च, स धर्म किं न सेव्यताम् ।"

मैं भुजा उठा कर चिल्ला रहा हूँ । मेरी कोई नहीं सुनता । मैं कहता हूँ धर्म ही प्रधान वस्तु है । उसी से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है । उस धर्म का सेवन क्यों नहीं कर रहे हो ?

आज मानव जीवन के रंगमंच पर जीवन के सभी मकानों में अर्थ और काम प्रधान सिंहासन पाए हुए हैं । धर्म इनका दास बना हुआ है । जो धर्म जगत् की सुन्दर व्यवस्था करने आया था, जो जगत् का धारण-पोषण करने और शुद्धि वृद्धि

करने आया था, आज उसकी पूछ सर्वत्र घट रही है। सभाओं मे, सोसाइटियो मे, उद्घाटनो मे, भाषणो मे, संस्थाओ मे, उपाश्रयों मे, मन्दिरो मे, स्थानको व धर्मस्थानो मे सभी जगह प्राय थैलीवालो को उच्चासन या अग्रासन मिलता है, धर्मात्मा—नकद-धर्म का आचरण करने वालो को नहीं। यह एक काफी शोचनीय वस्तु है। हमे इस स्थिति पर गभीरता से विचार करना चाहिए। और समाज में धर्म का आसन छीनने वाली इन कुप्रथाओ को धक्का देकर निकालना चाहिए। तभी धर्म की प्रतिष्ठा सुरक्षित रह सकती है, तभी त्याग और सदाचार को उच्चासन मिल सकता है। हाँ, तो, मै धर्म पर काफी बोल गया हूँ। आप लोग धर्म का रहस्य जानिए, उसे परखिए, अपने जीवन को धर्म से माजिए और उन्नत बनाइए, यही आशा मै आप से कर सकता हूँ।

पाँच

धर्मों की आवश्यकता

आर्यावर्त धर्म का आदि स्रोत रहा है। यहाँ धर्म की स्रोतस्विनी अतीत काल से जन-जन के मन में प्रवाहित होती रही है। जिसने जीवन में समरसता, सरसता और मधुरता का सञ्चार किया, मन और मस्तिष्क का परिमार्जन किया। जिसके द्वारा बहिर्मुखता को छोड़ कर वासनाओं के पाश से हट कर मानव शुद्ध चिद्रूप आत्म स्वरूप की ओर अग्रसर हुआ। जिसने विचारशोधन, वृत्तिशोधन और वर्तनशोधन किया, जो जीवन विटप का सुन्दर पुष्प है जिसके सौन्दर्य और सौरभ में ही राष्ट्रीय जन जीवन का सौन्दर्य और माधुर्य अन्तर्निहित है। जो आत्मा का आध्यात्मिक संगीत है, जिसकी सुरीली स्वर लहरी हिमालय से कन्याकुमारी तक ही नहीं, अटक से कटक तक ही नहीं, विश्व के सभी राष्ट्रों में, सभी महाद्वीपों में गूंजती रही। धर्म आत्मा को महात्मा और परमात्मा तक ले जाने वाला एक चिर पथप्रदर्शक है। जो मानव जीवन के विकास और अभ्युदय के लिए सतत प्रेरक रहा, जिस धर्म के बिना मानव समाज की कल्पना कल्पना मात्र है, धर्म ही जिस समाज का मस्तिष्क है जिसका जीवन में श्वास प्रश्वास की तरह महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो मानव समाज की चिकित्सा, व्यवस्था और उन्नति के लिए आशीर्वाद बनकर संसार में आया। जो

मानव-समाज, राष्ट्र और समष्टि तक की तमाम उलझनों को, गुत्थियो को सुलझाता रहा है, क्या उस धर्म की आज जन जीवन के लिए कोई आवश्यकता नहीं है? यह एक जलता हुआ प्रश्न हमारे सामने है, जिसका उत्तर हमे सोचना है।

धर्मों के पुराने इतिहास को पढ कर आज की अधिकांश बुद्धिवादी जनता तो धर्मों को बुरी तरह कोसने लगती है और घृणा पूर्वक कहने लगती है—जिस धर्म ने हमारे राष्ट्र का, समाज का सत्यानाश कराया, जिस धर्म ने भाई-भाई में आपस मे खून की होली खेलाई, जिस धर्म ने लाखो आदमियो को मौत के घाट उतार दिया; जिस धर्म ने अपने क्रान्तिकारी महामानवो को पैरो तले रौंद डाला, जिस धर्म ने असख्य अबलाओ को पराधीन बनने को विवश किया, जिस धर्म ने जगत् मे अन्ध श्रद्धा, मिथ्या धारणाएँ और कुप्रथाओ का शिकार मानव जाति को बनाया, जिस धर्म ने हजारो आदमियो को साडो की तरह लड़ाया, जिस धर्म ने परिग्रहवाद और भोगवाद को धर्म के नाम से बढने में सहायता दी, जिस धर्म ने बेईमानी और अन्याय-अत्याचार से कमाए हुए धन पर पुण्यवानी की, धर्मात्मापन की मुहर छाप लगाई, जिस धर्म के नाम से अन्याय, अत्याचार, छल छिद्र, पाखण्ड पूजा, व्यभिचार वृत्ति, दासवृत्ति आदि बुराइयाँ पनपीं, जिस धर्म ने मानव की मानवता को लूटखसोट कर दानवता के पथ पर ला खडा किया, जिस धर्म ने पण्डो, पोपो ठगो, कठमुल्लो आदि की दूकानदारी बढाने में सहायता दी, जिस धर्म ने केवल ईश्वर की चापलूसी करने से पापमाफी का फतवा दे दिया, क्या ऐसे धर्म को ससार मे रहने दिया जाय ? क्या ऐसे धर्म को विश्व में स्थान दिया जाय ? नहीं, नही, ऐसे धर्म को तो शीघ्र से शीघ्र खत्म करना चाहिए।' ये और इसी प्रकार

म अय कई सवाल उठा कर कई लोग धम की जड उखाडने को तुले हुए हैं। उन्हें यह पता नहीं कि धम दुनिया मे किस लिए आए है ? क्या धम दुनिया मे बुराइयां बढाने के लिए आए थे ? क्या धम दुनिया की बरबादी करने के लिए अवतरित हुए थ ? ना समझी के कारण, धम के नाम स कुछ स्वार्थी लोगों की चालबाजी के कारण धम इतना बदनाम हुआ है । धम अपने आप म कल्याण कारक है मगलमय है जगत् म शान्ति का सन्देश फैलाने वाला है । धम के नाम से अगर कोई मनचला ससार म प्रलयकारी दृश्य उपस्थित करता है, तो उसम धम का क्या दोष ? किसी आप्त पुरुष ने किन्हीं भोले भाले, गरीब आदमियों को एक ऐसा रत्न द दिया, जिसस वे सुख से जीवनयापन कर सकें, लेकिन अगर वे अपनी मूर्खतावश उस रत्न से आपस मे सिर फोडने लगते हैं एक दूसरे की कपाल क्रिया करने लगते हैं, तो इसम उस आप्त पुरुष का क्या दोष ? यही बात धम के सम्बन्ध मे है। अगर किसी महापुरुष ने जगत् की जनता को धमरत्न दे दिया है तो उससे जगत् कल्याण का प्रकाश लेना चाहिये था, लेकिन वे अगर आपस मे ही सिर फुटौवल करने लगते है, तू तू मैं मैं करने लगते है, तो इसमें न तो उस महापुरुष का दोष है और न धम का ही दोष है ? यह दोष जनता की नासमझी का है, जो धम का सदुपयोग नहीं कर सकते ।

धर्मों से जहाँ मनुष्यों ने अकारण मित्रता का पाठ पढा है, वहाँ अपनी नासमझी से अकारण शत्रुता का भी पाठ कम नहीं पढा है । धर्मों के आधार पर दुनिया म जहाँ स्वर्गों की सृष्टि हुई है वहाँ अपनी नादानी म नरकों की सृष्टि भी की है । धम से जनता को लाभ उठाना चाहिए था वहाँ जनता

पा दद मिट जाए।" दूसरा पुत्र कहन लगा– "अजी, विरचन देन स तुरन्त पेट का विकार शात हो जायगा। पट दद के लिए विरचन अचूक दवा है। तीसर न उस बात का काटन हुए हिंगाष्टक चूर्ण पट दद के लिए रामबाण बताया। चौथे ने कहा–'या ही अपनी अक्ल नही दौडानी चाहिए किसी सुयोग्य वद्य को बुलाकर पिताजी को दिखा देना चाहिए तब कोई इलाज शुरु करना चाहिए। पाँचवें ने कहा– 'भाई अगर वद्या की दवा से रोग मिट जाते तो दुनिया मे डाक्टरा का आज इतना बोल बाला क्या होता? इसलिए किसी होशियार डाक्टर का बुलाना ठीक रहेगा।' छठे ने उसकी बात को मजाक म उडाते हुए कहा–'वाह भाई वाह! डाक्टर तो छोटे से रोग को पमा लूटन के लिए बहुत बडा बता दिया करत ह। मुझे ता इनपर रत्ती भर विश्वास नही है। मरी सलाह म किसी होमियो पथिक चिकित्सक को बुलाना चाहिए। होमियो पथिक इलाज रोग की जड मिटा दता है। इस प्रकार उन छहा भाइया के आपस म गहरा विवाद छिड गया तथा सभी अपनी अपनी बात पर अडे रहे और आपस मे वाद विवाद बढते बढते गाली गलौज और हाथापाई तक की नौबत आ पहुँची। सातवा लडका जरा बुद्धिमान ज्यादा था वह एक दम उठा और भीतर स एक तलवार उठा लाया। उसन तलवार को म्यान से निकाला और सब को दिखाते हुए कहा— भाइया! इस सारे झगडे की जड पिताजी ह। वे अगर जीवित रह तो फिर कभी पेटदद उठ खडा होगा और फिर हमारी सिर फुटौवल शुरू हो जायगी अत पिताजी को ही विदा कर दना चाहिए, जिससे 'न रहेगा बास न बजेगी बासुरी' जब पिताजी ही न रहगे तो झगडे की जड ही मिट जायगी।

उन बच्चो ने अपने उपकारी, जन्मदाता पिता का पता नही क्या किया ? पर यह तो स्पष्ट था कि वे सारे के सारे अव्वल दर्जे के मूर्ख थे और समस्या की जड़ पर नही पहुँच रहे थे ।

यही बात आज कल के बुद्धिवादी कहे जाने वाले लोग धर्म के विषय मे करते है । जिस धर्म ने पिता के समान मानव जाति का धारण-पोषण किया, रक्षण किया और वृत्तिशोधन, विचारशोधन, वर्त्तनशोधन किया, जो हमारा उपकारी बन कर आया, उसे अपनी मूर्खता के कारण उस धर्म की हत्या करने को उतारू हो रहे हैं, धर्म विषयक विवाद और विरोध मचा कर स्वय अपने हाथो उसकी जान के ग्राहक बन रहे हैं। वे समस्या की जड़ पर नही पहुँच कर ऊपर के पत्तो को सीच कर समस्या हल करना चाहते हैं ।

अगर दीवार की ओट मे कोई चोर छिप जाता है तो उस दीवार को नही तोड़ा जाता, चोर को ढूढा जाता है। इसी प्रकार धर्म की ओट मे कई बुराइयां पनप रही हो तो उन बुराइयो को ढूढ कर दूर करना चाहिए, न कि धर्म की ही जान लेने पर उतारू होना चाहिए । नाक पर मक्खी बैठ गई है तो समझदार आदमी नाक को नही काट डालता, अपितु मक्खी को उड़ा देता है, इसी तरह धर्म पर अधर्म का, पाप का, अन्ध विश्वास का, पाखण्ड का और कुरूढियो का मैल जम गया है तो समझदारी का तकाजा यही है कि उस मैल को दूर हटाया जाय, साफ किया जाय; न कि धर्म को ही साफ करने का प्रयत्न किया जाय ।

आज ससार के विविध धर्मो मे जो आपसी वैमनस्य है, ईर्ष्या है, द्वेष है, उसका कारण ढूढा जाय तो यही मालूम

होगा कि विविध धर्मों ने विभिन्न देशों कालों परिस्थितियों और अवस्थाओं को देखकर अपना संदेश मानव जाति को दिया है। विभिन्न धर्मों के ध्येय में कोई अन्तर न दिखाई देगा अन्तर है तो ऊपरी विधिविधानों में, आचरण की प्रक्रियाओं में, धर्मशास्त्रों की भाषाओं में, शैली में और धर्मों के क्रियाकाण्डों में सो तो विभिन्न देश काल और परिस्थितियों के कारण होगा स्वाभाविक है! तीर्थंकरों के उपदेशों, संदेशों में भी विभिन्न देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कितना अन्तर रहता है? इसी चौबीसी के चौबीस तीर्थंकरों के विधिविधानों, धर्म क्रियाओं आचरण की प्रक्रियाओं में अन्तर है! यह अन्तर होने पर भी तीर्थंकरों के मूल ध्येय में कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार धर्म संस्थापकों ने अपने अपने युग में अपने समय की जनता की परिस्थिति और क्षेत्र देख कर किसी अमुक बात पर ज्यादा जोर दिया है, किसी पर कम। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उनका धर्मस्थापना का उद्देश्य जनता का अकल्याण करना था, जनता को गुमराह करना था। अगर हम नादान लोगों की धर्म के नाम से स्वार्थक्रीडा देख कर धर्म को अर्धचन्द्र देने लगते हैं तो हम भी उसी कोटि के समझे जायेंगे जो समस्या की जड़ को नहीं छूते, साप को नहीं पकड़ते, साप के बिल पर ही लाठियाँ बरसाते हैं।

जो लोग इतनी ताकत रखते हैं कि विविध धर्मों का भी सर्वथा नष्ट कर दें और उनके स्थान पर किन्हीं ऐसी विधली चीजों को न आने दें, वे अगर इसमें सफल हो सकें तो सचमुच श्रद्धा के पात्र हैं। किन्तु उनकी यह बात भावपूर्ण होते हुए भी पूर्णतया अव्यावहारिक है। जब तक मनुष्य के पास हृदय

और हृदय मे अच्छी बुरी प्रवृत्ति है, तब तक वह किसी न किसी रूप मे धर्म को अपनाए बिना न रहेगा। यह हो सकता है कि धर्म के किसी बाह्य रूप को नष्ट कर दिया, जाय परन्तु पुराना रूप नष्ट होते ही कोई न कोई नया रूप धारण करके धर्म हमारे सामने आ धमकेगा। एक फटा पुराना वस्त्र नष्ट होते ही धर्म कोई न कोई नया वस्त्र पहन कर हमारे हृदय के आँगन मे खेलने लगेगा। उसका ऊपरी चोला बदल जायगा, लेकिन वह सर्वथा नही जायगा। जिन देशो मे इस प्रकार धर्मो को नष्ट करने का प्रयत्न किया गया, वहाँ असफलता ही मिली। चर्च नष्ट कर दिये तो उनकी जगह लेनिन की कब्र ने ले ली। श्रद्धा, भक्ति आदि किसी न किसी रूप में सब जगह रहने वाले है, ये जब तक रहेगे, तब तक धर्मो को निर्मूल करना असभव है। धर्मो को नष्ट कर देने का मतलब होगा, मानव हृदयो को नष्ट कर देना, मानव को भावना हीन बना देना। भावना हीन मनुष्य बुद्धिमान् होने पर शैतान हो जाता है और बुद्धिहीन मनुष्य कोरा भावुक होने पर हैवान बन जाता है। मनुष्य को न तो शैतान बनना है और न हैवान। उसे इन्सान बनना है; और इन्सान बनने के लिए धर्मो की नितान्त आवश्यकता है। क्योकि धर्मो का काम ही मानव में रही हुई पशुता और दानवता को मिटाना या सीमित करना है।

अत. धर्मो के मूल उद्देश्य को समझकर सभी धर्मो मे रहे हुए सत्य को स्वीकार करो। सभी धर्मो मे एक रूपता का नहीं, एकता का बीज बोया जाय तो धर्मो से कल्याण का द्वार खुल सकता है। मानव समाज धर्मो से बहुत कुछ फायदा उठा सकता है।

इसलिए धर्मों की आवश्यकता के विषय में तो अब कोई सन्देह नहीं रह जाता। यह बात धर्मों का सदुपयोग करने वाले पर ही निर्भर है।

धर्मों की सफलता और कल्याणकारकता भी तभी सिद्ध हो सकती है, जब आप धर्मों के नाम से लड़ाई झगड़े न करके अपने अपने धर्म का अहिंसा सत्य आदि का यथोचित पालन करेंगे। तभी धर्म विश्व में स्वर्ग का सौंदर्य उपस्थित कर सकता है।

......६:

आचार और विचार

आर्यों का आध्यात्मिक प्रेम विश्व विश्रुत है। संसार का कोई भी देश आध्यात्मिक विकास मे आजतक आर्यावर्त्त की तुलना नही कर सका है। यहां के तत्त्वचिन्तको ने आत्मतत्त्व के गूढ रहस्य का समुद्घाटन करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न किए और उसमे उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

भारतीय तत्त्वचिन्तको के विचार का मुख्य केन्द्र बिन्दु आत्मविकास रहा है। वे विभिन्न ढग से, विभिन्न पहलुओ से विचार करके अन्त मे आत्मविकास की धुरी पर ही पहुँचते थे। अगर किसी विचार से आत्म विकास नही होता दिखता था तो वे उसे छोड़ देते थे। आत्मविकास का अर्थ है ज्ञान, दर्शन और चारित्र का विकास करना, आचार और विचार का विकास करना, स्वस्वरूप का विकास करना, आत्मगुणो की वृद्धि करना और ज्ञान एव क्रिया का विकास करना। जब तक इनका विकास समुचित मात्रा मे नही होता, तब तक आध्यात्मिक उत्क्रांति नहीं होती।

भारतीय दर्शनो मे से कुछ दर्शन सिर्फ ज्ञान को ही महत्त्व देते है और कुछ दर्शन क्रिया को। कितने ही दर्शनकार कहते हैं— 'ऋते ज्ञानान्नमुक्ति' अर्थात् ज्ञान के अभाव मे मुक्ति—

ग्राध्यात्मिक उत्क्रान्ति नही होती । तो कुछ दर्शन क्रिया से ही मोक्ष स्वीकार करते हैं । उनका कहना है— ज्ञान भार क्रिया बिना,' क्रिया के बिना ज्ञान भाररूप है ।

नैयायिकों का कहना है कि कारण की निवृत्ति होजाने पर कार्य की भी निवृत्ति होजाती है । ससार का ,कारण है मिथ्याज्ञान । जब मिथ्याज्ञान रूप कारण नष्ट होजाता है तो दुख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष ग्रादि कार्य भी नष्ट होजाते है । तत्त्वज्ञान से ही दुख निवृत्ति रूप मोक्ष प्राप्त होता है ।

साख्यदर्शन कहता है—प्रकृति ग्रौर पुरुष का जब तक विवेक ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक मुक्ति प्राप्त नही हो सकती । जब प्रकृति ग्रौर पुरुष मे भेदविज्ञान हो जाता है, जब पुरुष ग्रपने को निसग, निर्लेप, ग्रलग मानने लगता है ग्रौर प्रकृति को ग्रलग मानने लगता है, तब विवेक ख्याति पैदा होती है, ग्रौर यही मोक्ष का कारण है ।

वैशेषिक दर्शन कहता है—इच्छा ग्रौर द्वेष ही धर्म, ग्रधर्म ग्रौर सुख-दुख के कारण हैं । तत्त्वज्ञानी इच्छा ग्रौर द्वेष से रहित होता है, एतदर्थ उसे सुख दुख नही होता । वह ग्रनागत कर्मों का निरोध करता है ग्रौर सचित कर्मों को ज्ञानाग्नि मे विनष्ट कर मोक्ष प्राप्त करता है । इसलिए तत्त्वज्ञान ही मोक्ष का मुख्य कारण है ।

बौद्ध दर्शन कहता है—ग्रविद्या से बन्ध होता है ग्रौर विद्या से मोक्ष होता है । ग्रविद्या से भवचक्र बढता है ग्रौर ग्रविद्या का विनाश करने से ग्रौर सस्कारो का क्रमश क्षय करने से ही मोक्ष या निर्वाण मिलता है ।

इस प्रकार न्याय, सांख्य, वेदान्त, वैशेषिक, बौद्ध आदि दर्शन सिर्फ ज्ञान से ही मोक्ष स्वीकार करते हैं, क्रिया से नहीं। जब कि मीमांसक आदि कुछ दर्शन केवल क्रिया काण्ड, वेदोक्त विधि-विधान को ही महत्त्व देते हैं। वे कहते हैं ज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता, मोक्ष मिलता है आचार से, जप से, तप से, क्रिया काण्ड से। इस लिए क्रियाकाण्ड व वेदविहित कर्म खूब करना चाहिए।

आप जानते है कि मिश्री मीठी होती है किन्तु जब तक उसे मुंह मे न रखे तब तक उसके मिठास का, माधुर्य का आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। यदि किसी मनुष्य को यह ज्ञान नहीं है कि मिश्री की डली मे मिठास होता है, किन्तु वह उस डली को मुंह मे रखता है तो उस समय उसे स्वत ज्ञान हो जाता है। बिना ज्ञान के भी मिश्री उसे उतनी ही मीठी लगती है, जितनी कि एक मिश्री के विशेषज्ञ को। यही बात क्रिया के सम्बन्ध मे है। यदि हम उसके सम्बन्ध में विशेषज्ञ नहीं है, मामूली सा जानते है, फिर भी उसका आचरण करते है तो धीरे-धीरे उसका स्वत विशेषज्ञान होने लगता है और जीवन मे पवित्रता व निर्मलता आने लगती है। किन्तु अगर किसी क्रिया के सम्बन्ध मे जान कर के भी, विशेषज्ञान होने पर भी आचरण नही करते है तो जीवन मे पवित्रता नही आ सकती। इसलिए जानना उतना मुख्य नहीं, जितना कि आचरण करना है। इसीलिए स्मृतिकार ने आचरण को महत्त्व देते हुए कहा है—

"आचार प्रथमो धर्म., आचार. परम तप.
आचार परम ज्ञानमाचारात् कि न सिद्धयति ?"

आचार हो परम धम है, आचार ही परम तप है आचार ही परम नान है, नान का स्रोत है, आचार म क्या नही सिद्ध होता ? यानी आचार स मानव जीवन मे सभी कुछ सफलताएँ मिल सकती ह ।

हाँ, ता मै आपसे बात कर रहा था कि कितने ही दशन नान को महत्त्व दत है, विचार पर जोर दते हैं तो कितने ही दशन क्रिया को महत्त्व देते है, आचार पर जोर दत हैं। परन्तु जन दशन दोना का समवय और सन्तुलन करता है । वह न केवल क्रिया को ही महत्त्व दता है और न एकान्त ज्ञान को । जनदशन का वज्र आघोष है कि नान के अभाव मे केवल क्रिया थोथी है निष्प्राण है, अधी है । विचार रहित कोरा आचार भव-भ्रमण का कारण बन सकता है । इसके विपरीत क्रिया के अभाव मे आचार से रहित कोरा ज्ञान या विचार लगडा है गति हीन है, आध्यात्मिक प्रगति मे रुकावट का कारण है । जब तक नान और क्रिया विचार और आचार य दाना पथक पृथक रहते है, तब तक अपूर्ण है, इन दोनो का जब समवय हाता है, तब ये पूर्ण होते हैं । पूर्ण होने के पश्चात् जीवन मे चमक-दमक आती है । जीवन को चमकान क लिए उच्च विचार के साथ उच्च आचार की आवश्यकता है । जहाँ विचार के साथ आचार का समवय होता है, वहीं जीवन ऊपर उठता है, अमरत्व का प्रशस्त सिंहासन प्राप्त करता है।

जसे अनन्त गगन मे ऊँची उडान भरने के लिए पक्षी का स्वस्थ और अविकल दोना पाखें अपेक्षित होती है वस ही साधक को साधना के आकाश म आध्यात्मिक उडान भरने के लिए नान और क्रिया अथवा आचार और विचार की स्वस्थ

और अविकल पाँखे आवश्यक है, अपरिहार्य है । यदि पक्षी की एक पाख स्वस्थ है और दूसरी पाख सड गई है, नष्ट हो गई है तो वह अनन्त आकाश मे उड़ान नही भर सकता, चाहे वह कितना प्रयत्न कर ले, सफल नहीं हो सकता । उसे सफलता तभी मिल सकेगी, जब उसकी दोनो पाखें सबल, स्वस्थ और अविकल होगी । ठीक इसी तरह साधक जीवन मे भी तभी सफलता मिल सकती है, जब विचार और आचार की दोनो पाखे मजबूत और अविकल होगी ।

बिजली के दो तार होते है, एक नेगेटिव और दूसरा पोजिटिव । जब तक ये दोनो तार पृथक् पृथक् रहते है, तब-तक आपका कमरा मगलमय प्रकाश से प्रकाशित नही हो सकता, पखा आपको हवा नही दे सकता, रेडियो पर रागरागिनी थिरक नहीं सकती, हीटर पानी गर्म नही कर सकता, चाहे आप कितनी ही बार बटन दबाएँ किन्तु यदि ये दोनो तार मिले हुए होते है तो बटन दबाते ही प्रकाश हसने लगेगा, पखा नृत्य करने लगेगा, रेडियो श्रुति मधुर स्वर्गीय सगीत की स्वर लहरी सुनाने लगेगा, हीटर पानी को उबाल देगा। इसी प्रकार साधक जीवन की स्थिति है । यदि उसके जीवन मे विचार और आचार के दोनो तार नहीं है तो आध्यात्मिक प्रकाश फैल नही सकता, उत्क्रान्ति की हवा मिल नहीं सकती, विश्व के आध्यात्मिक सगीत की स्वर लहरी सुनाई नहीं दे सकती, साधना की गर्मी आ नहीं सकती ।

वैज्ञानिको का मानना है कि ऑक्सिजन और हाईड्रोजन दोनो के सयोग से जलीयतत्त्व तैयार होता है । यदि इन दोनो

के अभाव म प्राणी की क्या स्थिति हो सकती है उसकी कल्पना आप स्वय कर सकते है । इसी प्रकार विचार ग्रौर ग्राचार इन दोनो से ही जीवन रूप जल तयार हो सकता है इन दोना क सयोग के ग्रभाव मे जीवन मे साधना का प्राण नही ग्रासकता वह जीवन एक तरह से ग्राध्यात्मिक मृत्यु का प्राप्त है ।

डॉक्टरो का कहना है—हमारे शरीर मे मुख्यत दो प्रकार की शक्तियाँ हैं—एक मस्क्यूलर स्ट्रेन्थ, दूसरी नवस स्ट्रेन्थ । हिन्दी भाषा मे इन दोनो को शारीरिक शक्ति ग्रौर स्नायविक शक्ति कह सकते हैं । जब ये दोना शक्तियाँ पूर्ण रूप स समान मात्रा मे, सतुलित मात्रा मे होती है तभी हमारा शरीर स्वस्थ ग्रौर मस्त रहता है। जसे शरीर को स्वस्थ ग्रौर मस्त रखने के लिए उक्त दोना शक्तियाँ ग्रपेक्षित है वसे ग्रात्मा की स्वस्थता ग्रौर मस्ती के लिए भी ज्ञान ग्रौर क्रिया ग्रथवा विचार ग्रौर ग्राचार इन दोना शक्तियो की ग्रपेक्षा है । दोना शक्तियो क समान रूप स विकसित होने पर ही हमारा ग्रात्मा स्वस्थ ग्रौर मस्त रह सकता है, एक की उपेक्षा करके यदि हम जीवन निर्माण करना चाहें या उज्ज्वस्वल व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहें तो आकाश कुसुमवत् ग्रसभव है ।

जीवन क इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए महा कवि जयशकर प्रसाद न कामायनी क रहस्य सर्ग मे ठीक ही कहा है—

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्यो हो पूरी मन की ।
एक दूसरे से मिल न सके, यह विडम्बना है जीवन की ॥

आपने देखा होगा, घडी मे दो काटे होते हैं । एक काटा ६० मिनट म आगे सरकता है और दूसरा काटा प्रति सकेंड

आगे वढता जाता है और ६० मिनट मे सभी अको पर पूरा चक्कर लगा लेता है । इन दोनो काटो के व्यवस्थित ढग से चलने पर ही घडी ठीक समय वता देती है । दोनो कांटो मे से एक काटा न हो या ठीक ढग से गति न करता हो, तो घडी ठीक समय नही देगी । फिर घडी वीमार होजायगी और घडीसाज के यहाँ उसकी चिकित्सा करानी होगी । ठीक इसी प्रकार हमारे जीवन मे विचार और आचार के दोनो काटे ठीक ढग से गति न करें या दोनो मे से एक काटा खराव होजाय तो हमारी जीवन की घडी आगे वढने से रुक जायगी । हमे आत्मशुद्धि या तपश्चर्या द्वारा जीवन घडी की भी चिकित्सा करनी पडेगी ।

आज मै देखता हूँ कि हमारे सामाजिक जीवन मे काफी गडवडी चल रही है। एक ओर शिक्षा का ढेर लग रहा है, पुस्तको के वोझ से युवक दवे जा रहे है, उनके विचार इतने आगे वढ गए है कि समाज उनके विचारो को छू नहीं सकता। दूसरी ओर उनके आचार का हाल यह है कि वे विलासिता, भोगवाद, फैशन और खाने पीने में ही जीवन का वास्तविक सुख समझ रहे हैं । चैन की वसी वजाने में ही उन्हे जीवन का आनन्द लगता है । इसी तरह पुराने विचारो के जो वुजुर्ग या प्रौढ़ लोग है, वे केवल पुराने अन्ध श्रद्धा से पूर्ण विचारो को पकड़े हुए है, साथ ही आचार के क्षेत्र मे वे काफी पिछडे हुए है। प्रतिक्रमण करते समय व्यापारिक क्षेत्र की भूलो व अतिचारो का उच्चारण करके 'मिच्छामि दुक्कड' दे देंगे, पर जीवन मे वह उतरेगा नहीं, धर्म स्थान से निकलने पर जीवन के मैदान मे उनका रवैया वही होगा, जो पहले था । इस कारण युवको की श्रद्धा भी आचार से धीरे-धीरे खिसकती जा

रही है। भारतीय जन-जीवन मे विचार ग्रौर ग्राचार के ग्रलगाव का एक ज्वार सा ग्राया हुग्रा है। कुछ लोगा मे विचार रहित ग्राचार का बोलबाला है तो कुछ लाग ग्राचार हीन विचारा को पकडे हुए है। समाज मे दोना का सामञ्जस्य नही दिख रहा है। यही कारण है कि ग्राज हमारे ग्राध्यात्मिक जीवन भी सूखे रेगिस्तान जसे हो रहे है, मरुभूमि की मृगमरीचिका की तरह ग्रध्यात्म का ग्राडम्बर जरूर देखने को मिलेगा, पर पास जाने पर ग्रथवा सम्पर्क मे ग्राने पर ग्राध्यात्मिकता नाम की कोई चीज नही मिलेगी।

ग्रद्वैतवाद के एक धुरधर विद्वान् भारत मे घूम रहे थ। उन्होने ग्रद्वैतवाद का ग्रध्ययन तो खूब किया था पर उन्हें वह पचा नहीं था। एक बार घूमते घामते वे एक भक्त के यहाँ पहुँच गये। उन दिना कडाके की सर्दी पड रही थी। भक्त ने कहा—"नहाने के लिए पानी लाऊ महाराज!" वेदान्तीजी हसे ग्रौर कहने लगे—"तुम लोग कुछ भी नहीं समझते। जहाँ ज्ञानगंगा बह रही हो, वहाँ नहाने की जरूरत क्या है?" सेवक भी कच्चा नहीं था। उसने भी वेदान्तीजी की ग्रच्छी तरह से परीक्षा करने की ठानी। उसने घर जाकर ग्रपनी पत्नी से बडे पकौडे बनाने के लिए कहा। वेदान्तीजी को वह घर पर ले गया। खूब स्वागत सम्मान के साथ उन्हें भोजन कराया। भोजन करने के बाद सेवक ने वेदान्तीजी को एक कमरा ग्राराम करने के लिए बता दिया। वेदान्तीजी सो गये। सेवक ने मौका पाकर दरवाजा बन्द करके बाहर का कुडा लगा दिया। ग्रब क्या था? वेदान्तीजी गरमागरम पकौडे बडे खाये हुए थे इसलिए जोर की प्यास लगी। ग्रास पास देखा तो वहाँ सेवक ने पानी बिल्कुल नहीं रखा था।

अन्त मे वेदान्तीजी ने उठकर दरवाजा खटखटाया । जब सेवक नहीं बोला तो उन्होने जोर से कहा— अरे भैया, मुझे प्यास लगी है । सेवक ने कहा— "महाराज, ज्ञानगगा बह रही है, उसमें से एक लोटा भर कर प्यास बुझा लीजिए !" वेदान्तीजी समझ गए और मन ही मन सोचा सेर को सवासेर मिला तो सही ! उन्होने शरमाते हुए सेवक से माफी मागी । सेवक ने दरवाजा खोला और पानी लाकर प्यास बुझाई ।

हाँ, तो इस तरह केवल ज्ञानवाद बघारने वाले दुनिया मे, विशेषत भारत वर्ष मे बहुत होगए है, उनसे समाज में विचारो की भी प्रगति रुक गई, जडता और गैरजिम्मेवारी ज्यादा बढ गई है और आचरण का भी दुष्काल सा पड गया है ।

आज हमे अपनी दयनीय दशा पर विचार करना होगा कि वास्तव मे हम व हमारा देश क्यो पिछड गया है ? दूसरे देश आध्यात्मिकता का दावा नही करते, फिर भी ईमानदारी और नैतिकता में हमारे देश से क्यो आगे बढ गए है ? इसका कारण है वहाँ विचार और आचार का मेल है, सामञ्जस्य है । कथनी और करनी का मेल ही जीवन को ऊँचा उठाता है । यहाँ उपस्थित विद्यार्थियो से एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि 'राम जाता है' इस वाक्य मे कर्ता कौन है और क्रिया कौन है ? स्पष्ट है कि 'राम' कर्त्ता है और 'जाता है' क्रिया है । यदि केवल कर्ता ही हो और क्रिया न हो तो क्या वाक्य बन सकता है ? नहीं, वाक्य को पूर्ण बनाने के लिए कर्त्ता के साथ क्रिया आवश्यक है । यदि कर्त्ता है और क्रिया नही है अथवा क्रिया है और कर्त्ता नहीं है तो वाक्य पूर्ण बन नहीं सकता और न उन शब्दो का अर्थ ही हो सकता है ।

नीवन भी एक वाक्य है और यह वाक्य तभी पूरा होगा जब हम नान का त्रियात्मक प्रयोग करेंगे जानकर उसका आचरण करेंगे ।

बडौदा का एक प्रसग मुझे याद आरहा है । सर सयाजीराव की अध्यक्षता मे एक विराट सभा का आयोजन हो रहा था। जिसम अहिंसा पर अभिभाषण रखे गए थे । एक मद्रासी अभिभाषक की अभिव्यक्ति इतनी सुदर और चित्ताकर्षक थी कि जनता मन्त्रमुग्ध होकर अहिंसा पर किये गए उनके विश्लेषण को सुन रही थीं । पडाल तालियो की गडगडाहट से गूज रहा था । अभिभाषक महोदय का शरीर जब स्वेद म तरवतर होगया तो उन्होंने जेब से एक रुमाल निकालने के लिए हाथ डाला । किन्तु वे बोलने म तन्मय हो रहे थे इसलिए जेब स रुमाल निकालने के साथ ही उनके ध्यान न रखने से दो अण्डे बाहर आकर गिरे। जिन्हें देखते ही सभासद् आश्चर्यचकित होगए । कहने लगे—"क्या अहिंसा पर इतना गभीर विवेचन करने वाला व्यक्ति अडे खाता है ? " अध्यक्ष स्थान से भाषण देते हुए सर सयाजीराव ने कहा—'ऐसे व्यक्तियो ने ही देश का सत्यानाश किया है जो कहते है, पर कुछ करते नही । विचार के साथ आचार जिनके जीवन मे नहीं है वे कोरे भाषणभट्ट हैं ।

हाँ, तो जानने के साथ ही आचरण करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है । भारतीय सस्कृति के विचारक से एक साधक ने प्रश्न किया— "भगवन् ! नान का फल क्या है ?' उत्तर देते हुए उस विचारक ने कहा—'नानस्य फल विरति नान का फल बुरे कार्यों स विरत होना है । ' धमदासगणि

ने उपदेश माला मे कहा है—"एक गधा है, जिसकी पीठ पर बावना चदन लाद दिया जाय, जिसमे खूब महक है, सौन्दर्य है, शीतलता भी है, परन्तु गधे के लिए तो वह कोई आनन्दप्रद नहीं है, उसके लिए तो भारभूत ही है। इसी तरह जो साधक ज्ञानी तो है, किन्तु आचरण रहित है, उसके लिए वह ज्ञान भार रूप है, निरुपयोगी है, किसी काम का नही है—

"जहा खरो चदण भारवाही, भारस्स भागी न हु चदणस्स।
एव खु-नाणी चरणेण हीणो, नाणस्स भागी न हु सुग्गइए।'

—"उपदेशमाला"

महात्मा बुद्ध ने एक रूपक कहा है—जैसे गाये चराने वाला ग्वाला दूसरो की गायें चराता है, वह दूसरो की गायें गिन सकता है, गायो का मालिक नही बन सकता, दूध नही पी सकता, इसी तरह जो केवल ज्ञान बघारता है, वह उस आचरण का, अनुभव का स्वामी नहीं है। केवल पोथियाँ गिन सकता है, या दिमाग मे-ज्ञान ठूसकर रख सकता है। इसी प्रकार जैसे चाटु भोजन के सभी पदार्थों मे डाला जाता है किन्तु वह रस का अनुभव नहीं कर सकता, उसी प्रकार कोरा ज्ञान बघारने वाला अनुभव रस का, आचरणानन्द का आस्वादन नहीं कर सकता।

अत जैसे सूर्य और प्रकाश दोनो साथ-साथ रहते है, इसी प्रकार ज्ञान और क्रिया अथवा आचार और विचार साथ-साथ रहेगे, तभी हमारा जीवन अलौकिक साधना से चमक उठेगा।

बहुत से लोग बातें बहुत बडी-बड़ी कर लेगे, विचारो में आपसे बाजी मार जायेगे, पर जब आचार मे-कार्य मे परिणत

करने का सवाल आएगा, तब कोई न कोई बहाना ढूंढकर छिटक जायेंगे । यह मनुष्य जाति का महान् दुर्भाग्य है कि वह विचारों को आचार का रूप देने में बहुत घबराता है । कई लोग तो विचार तक सहिष्णु होते हैं कोई साधक किसी विचार को जनता के समक्ष प्रकट करता है तो उसकी हाँ में हाँ मिला देंगे, प्रशंसा के पुल भी बांध देंगे, परन्तु ज्यों ही उसने उन विचारों को अमली रूप देना शुरू किया कि वे महाशय विरोधी बन जायेंगे । विचारों से सहमत और कार्य (आचार) से असहमत विचारों से संतुष्ट और कार्य (आचार) से रुष्ट होने वाले महानुभावों की संख्या कम नहीं है । और जब तक समाज में विचार और आचार का यह द्वैविध्य है, तब तक उसकी गाडी अवनत दशा के दलदल में फंसी हुई समझनी चाहिए ।

इसीलिए विचारों को आचार रूप में परिणत करते समय समाज का मानसिक निर्बलता बताता है परिस्थिति को प्रतिकूल बना देता है या ईर्ष्यावश वहीं अटका रहना चाहता है यह एक भयंकर बीमारी है । हमें विचार को साधन मात्र समझना चाहिए और उसके आचार को समझना चाहिए साध्य ! जब तक हम किसी विचार को आचार में, कृति में न उतार दें तब तक उस विचार की उपयोगिता ही क्या है ? इसलिए विचार के अनुरूप अगर थोडा सा भी आचार हो तो समाज में प्रगति होते देर न लगे ।

महाभारत काल में दुर्योधन बडा राजनीतिज्ञ होगया है । उसकी सभा में बडे बडे विद्वान् शास्त्रज्ञ इतिहासज्ञ, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ रहा करते थे । वे ... का

निचोड निकालकर रख देते थे किन्तु दुर्योधन सिर्फ यही कहता था .—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति·
जानाम्य धर्मं न च मे निवृत्तिः

मै धर्म को जानता हूँ, परन्तु उसमे प्रवृत्ति नही करता । अधर्म को भी जानता हूँ, पर उससे निवृत्ति नही है ।

सिर्फ भेजे मे किताबे ठूंस देने से ही कोई मनुष्य अगर ज्ञानी वन जाता हो तो पुस्तकालय की अलमारियाँ भी ज्ञानी हो जॉय ।

एक रोमन दार्शनिक के सामने एक वाचाल डीग हॉकने लगा कि— "मैने भी वडे-वडे विद्वानो को देखा है, और उनके साथ वार्तालाप भी किया है ।" दार्शनिक ने तुरत उत्तर दिया— "भाई, मैने भी अनेक धनिको को देखा है, उनके साथ वात-चीत भी की है, किन्तु इससे मै धनिक नहीं होपाया ।"

स्वामी रामदास कहते है —

"समझले आणि वर्तले, ते चि भाग्य पुरुष झाले ।
येर ते वोलत चिराहिले, करटे जन ।"

अर्थात् .—जो भाग्यहीन होते है, वे केवल वोलते ही रहते है, सुनते ही रहते हैं, लेकिन भाग्यवान् वे है, जो किसी विचार को समझने के वाद उस पर अमल करते हैं ।

एक शायर कहता है .—

"खुदा का नाम गो अक्सर, जवानो पर है आजाता ।
मगर काम उससे जव चलता कि वो दिलमे समा जाता ।"

कोई मनुष्य परमात्मा का नाम ही नाम लेता रहे परमात्मा को दिल म न रमाये उनका काम न करे तो उस नाम स कोई काम नही चलता। अग्नि का नाम लेने मे कोइ रोटिया थोडे ही सिक जायेंगी ? पानी का नाम लने से ही प्यास नहीं बुझ जायगी। इसी प्रकार किसी विचार को समझ लेने, उच्चारण कर लेने, वादविवाद कर लेने मे ही कोई काम नहीं होता।

मैं आपके सामने फोनोग्राफ की चुडिया की तरह व्याख्यान झाडता रहूँ और आप भी कठपुतलियो की तरह सुनकर रवाना होजाय उसम से राई भर भी आचरण न करें तो वह उपदेश वह व्याख्यान मेरे और आपके दोनो के लिए अहितकर होगा। अगर एक श्रोता मन भर सुनकर कण भर भी आचरण करे तो उससे भी काफी हित हो सकता है। एक माल मे कम स कम एक व्रत भी सुनकर अच्छी तरह धारण करें, अमल म लावें तो बारह वर्षों म बारह व्रतो को धारण कर आचरण म लाया जासकता है। पर इस बात को आप सुनकर भी अमल मे लाने का विचार प्राय नही किया करत।

मैं चाहता हूँ कि समाज मे आज जो विचार और आचार के बीच चौडी खाई पडी हुई है उसे पाटा जाय। अन्यथा वह दिन दूर नही, जबकि विचार केवल विचार ही रह जायेंगे और आचार स्वप्न की वस्तु होजायगी। विचारो के अनुरूप जब हम आचरण करें तभी समाज, देश और राष्ट्र का भविष्य उज्वल है।

......सात

चले चलो! बढ़े चलो!!

मानव समाज का उज्ज्वल अतीत हमारे सामने है। जिसमे समाज के जीवन की रेखाएँ चमक रही है। हजार हजार और लाख-लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जिनकी जीवन रेखाएँ धुधली नही पडी है, आज भी वे उसी प्रकार जगमगा रही है।

मानव का आदिमकाल, जिसे हम जैन परिभाषा मे यौगलिक युग कहते है और वैदिक परिभाषा मे जिसे त्रेता युग कहा जाता है, उस पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि आदिमकाल का मानव विचरणशील था, घुमक्कड़ था, खानाबदोश था, वह एक जगह डेरा डाल कर या घर बसा कर आज की तरह नही रहता था। वह घूम-घूम कर प्रकृति का सौन्दर्य निहारता था, प्रकृति के अनुपम उपहार स्वरूप हवा, धूप, फल और कन्दमूल प्राप्त कर वह अपने जीवन की मधुरिमा को बढाता था। वृक्षो से ही उसकी सभी मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थी। उस युग के मानव की आवश्यकताएँ भी अधिक नही थी। प्रकृति की प्रेम भरी गोद मे अपने जीवन की अमूल्य घडियाँ बिताते बिताते वर्षो हो गए। समय बदला वृक्षो से आवश्यकताओ की पूर्ति नही होने लगी तब एक महान्

विचारक और जीवन का कलाकार आया, जिसने बीहड वनो मे घूमते हुए इसान की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए खेती करने की कला सिखलाई, ग्रामोद्योगो और गृहोद्योगो की शिक्षा दी फलत उस युग का मानव आर्य कहलाने लगा । कर्मयोग की शिक्षा-दीक्षा से सम्पन्न होने लगा । अब इसान घर बसा कर रहने लगा । ग्राम और नगर बसाकर अपनी सभ्यता और संस्कृति का प्रसार करने लगा । समाज बना कर अपना जीवन यापन आनन्द से सुरक्षा पूर्वक करने लगा ।

समाज मे विविध कार्यों की सुव्यवस्था के लिए चार वर्ण नियत कर दिये गये—ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । इन चारो ही वर्णों का मूल उद्देश्य था समाज जीवन की यात्रा सुखपूर्वक हो । वर्णों की स्थापना के समय उच्चता-नीचता की भावना कहा भी न थी । चारो ही वर्णों का अपनी मूल प्रवृत्ति घुमक्कड होने के कारण स्थिर हो जाने पर भी वह प्रवृत्ति दूसरे रूप मे पनपने लगी ।

ब्राह्मण वर्ग का मूल कार्य था, समाज के विकास के लिए सुदर चिन्तन करना समाज मे विद्याओं और कलाओ का प्रसार करके समाज को सुसस्कारी बनाना, समाज मे कर्त्तव्यो की सीमा रेखाएँ बाधना और इस प्रकार से समाज की नैतिक चोटी पर उसे उन्नति के पथ पर ले जाना। इस महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व को पूर्ण करने के लिए ब्राह्मण स्वय अध्ययन-अध्यापन के निए अपना घर छोड कर निस्पृहभाव से देशाटन करता, दूर सुदूर देशो और प्रान्तो मे जाकर समाज के विकास का अध्ययन करता । इस यात्रा को विद्यायात्रा कहा जाता था । विद्यायात्रा के पूर्ण होते ही वह पदयात्रा मे जाता था।

वर्षावास के समय को छोड कर शेष आठ महीनो तक वह 'चरैवेति चरैवेति' के सिद्धान्त को अपना कर चलने मे ही आनन्द का अनुभव करता था। और जीवन की अन्तिम घडियो मे भी एक स्थान पर रह कर कीडे मकोडो की तरह रेंगते हुए मरने की अपेक्षा घूमते हुए मरना श्रेयस्कर समझता था।

क्षत्रिय का कार्य था समाज मे होने वाले अन्यायो, अत्याचारो मे दुर्बलो की रक्षा करना, समाज मे न्याय और सुरक्षा की व्यवस्था करना। क्षत्रिय केवल अपने सिंहासन पर बैठ कर, या उच्च राजप्रासादो मे बैठकर रंगरेलिया करने के लिए नही था। उसके कर्णकुहरो मे जब भी किसी दीन-हीन, दुर्बल, असहाय व्यक्ति की आवाज पडती कि वह रक्षा के लिए, न्याय दिलाने के लिए दौड पडता। प्राण हथेली पर रख कर वह अपने इस उत्तर-दायित्व को पूर्ण करता था। उसके कानो मे भी वृद्धश्रवा इन्द्र का "चराति चरतो भग." जो बैठा रहेगा उसका भाग्य भी बैठा रहेगा, "जो चलता रहेगा उसका भाग्य भी गतिशील होगा," का मन्त्र गूजता रहता था। अत वह भी अपने देश की, समाज की, नगरो की, जाति की और दुर्बलो की रक्षा के लिए ससैन्य अभियान करते थे! जिसे विजय-यात्रा कहा जाता था।

वैश्यवर्ण का कार्य था समाज मे जिस किसी भी वस्तु की जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ उसकी पूर्ति करना उत्पादन और वितरण का पूरा हिसाब रखना, योजना बद्ध कार्य करना। इस कार्य को वाणिज्य या व्यापार कहा जाता था। इस समाज सेवा के उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए वैश्य हिमालय से कन्याकुमारी तक, और अटक से कटक तक नही, किन्तु विशाल

वाय ममुद्रा को लाघ कर विदेशा म भी पहुँचता था, जहाँ से आवश्यक वस्तुए लाता था और वहाँ क लिए आवश्यक वस्तुएँ दे आता था । इस प्रकार कभी-कभी तो एक बडा सा काफिला लेकर लाखा की साधन सामग्री साथ मे लेकर वह एक गाँव से दूसरे गाँव यात्रा करता था । एक स्थान स दूसरे स्थान पर माल का नियात व आयात करने के कारण वह सार्थवाह' कहलाता था ।' इस प्रकार वह नतिकतापूर्वक व्यापार करके अपनी व समाज की जीवनयात्रा को सुखद बनाने का प्रयत्न करता था ।

शूद्र का काय था विभिन्न कलाओ, उत्पादनो या कार्यों द्वारा समाज की सुख सुविधाएँ बढाना, समाज क जीवन म बाधक तत्त्वो को दूर करना, समाज को सब ओर से निश्चिन्त बनाना । सेवा के इस गुरुतर भार को वहन करने के कारण शूद्र का उत्तरदायित्व सबसे बढकर था उसे सेवा करने क लिए, शिल्प और कलाएँ सीखकर समाज को सुखी बनाने के लिए विविध यात्राए करनी पडती थीं । उसकी वह यात्रा सेवायात्रा कहलाती थी ।

इस प्रकार चारो ही वर्णों म यात्रा का महत्त्व था । सन्त वर्णातीत होता है । वह वर्णों की चार दीवारी मे बन्द नही होता । वह चारो ही वर्णों से ऊपर उठ कर समाज मे अलिप्त रहते हुए भी समाज को नतिक धार्मिक प्रेरणाए देता रहता था समाज जीवन की नतिक धार्मिक चौकी रखता था । उसका अपना वहाँ कोई घर मकान या आश्रम नही होता । वह विश्व को अपना कुटुम्ब, मान कर चलता है । इसीलिए सारे विश्व क नातिक माड दन क लिए,

मानव समाज मे धर्मदृष्टि सतत प्रज्वलित रखने के लिए वह एक स्थान से दूसरे स्थान घूमता रहता है। सरिता की सरल धारा के समान, विघ्नो की चट्टानो को चीरते हुए आगे बढना और गाँव-गाँव मे धर्म की अलख जगाना ही उसका लक्ष्य होता है। वह एक स्थान पर चिरकाल तक स्थिर नहीं रहता। यदि कदाचित् कारणवशात् उसे रुकना भी पडता है तो वह तन मे रुकता है, मन से नहीं, मोहवश नहीं। अत भारत का सन्त, सदा विचरण करता रहा है, एक स्थान के मोह मे फस कर वह रुकता नही। वर्षावास को छोड कर आठ महीनो मे सतत विचरण करना उसका प्रधान कार्यक्रम रहा है। यही कारण है कि आगमो मे जहाँ साधक सयम मार्ग ग्रहण करता है, दीक्षा अगीकार करता है, वहाँ दीक्षा के अर्थ मे पवज्जा और 'प्रव्रज्या शब्द आता है। जैन साधु के लिए शास्त्रो मे यत्र-तत्र 'प्रव्रजित' शब्द आता है। जिसका व्युत्पत्त्यर्थ इस प्रकार होता है— प्र-उपसर्ग है, व्रज धातु गत्यर्थक है, दोनो मिल कर और या प्रत्यय लग कर 'प्रव्रज्या' शब्द बना है, जिसका अर्थ है प्रकर्षरूप से घूमते रहना। वैदिक साहित्य में इसी अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए सन्त का पर्यायवाची शब्द 'परिव्राजक' आता है, जिसका अर्थ होता है, घुमक्कड़, घर बार का मोह छोड कर विचरण करने वाला।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत में एक सस्कृति का विकास हुआ था, जिसका नाम श्रमण सस्कृति है। जैन और बौद्ध इसी सस्कृति की दो धाराएँ है। यद्यपि आजीवक, अकारकवादी आदि अनेक धाराएँ उस समय थी, लेकिन वर्तमान मे जैन और बौद्ध ये दो धाराएँ ही बच पाई है। इन दो धाराओ के सन्त सदा से घुमक्कड रहे है।

महात्मा बुद्ध का यह मन्तव्य था कि जिस प्रकार गडा अकेला वन में निर्भय होकर घूमता है, वैसे ही श्रमणों को भी निर्भय होकर घूमना चाहिए। एक समय उन्होंने अपने साठ शिष्यों को बुलाकर अपना सन्देश दिया था —

'चरथ भिक्खवे बहुजनहिताय बहुजनसुखाय,
चरथ भिक्खवे, चारिका, चरथ भिक्खवे चारिका।"

भिक्षुओ, बहुत से लोगों के हित के लिए और अनेक लोगों के सुख के लिए विचरण करो। भिक्षुओ! अपनी जीवनचर्या के लिए सतत चलते रहो सतत भ्रमण करते रहो। सम्राट अशोक ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पश्चात् दिग्विजय को छोड़कर धर्मविजय के लिए प्रतिवर्ष यात्राएं कीं।

बौद्ध धर्म के दूरसुदूर भूखण्डों में फैलने, लंका, जावा, सुमात्रा, ब्रह्मा (बर्मा) श्याम, चीन जापान, तिब्बत आदि एशिया के विशाल भूभागों में प्रसारित होने का श्रेय एकमात्र बौद्ध भिक्षुओं के पदल भ्रमण को है, विचरण को है। बौद्ध भिक्षुओं ने सतत घूम-घूम कर अपने आचरण के द्वारा उपदेशों के द्वारा, बुद्धशिक्षा के द्वारा उन तमाम भूभागों में धर्म नीति सभ्यता और संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया है।

भारत के महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन ने घुमक्कड शास्त्र नामक एक पुस्तक पदयात्रा पर लिखी है उसमें उन्होंने प्राचीन युग के घुमक्कडों का वर्णन करते हुए 'घुमक्कडी' के अनेक लाभों का वर्णन किया है। भगवान् महावीर को भी उन्होंने 'घुमक्कडराज' का पद दिया है और उनके भ्रमण के प्रभावों का वर्णन भी रोचक शैली में किया है।

भगवान् महावीर ने स्वय ही अपने साधुसाध्वियों को अपने प्रवचन मे कहा था —

'भारंड पक्खीव चरेऽप्पमत्ते'

हे श्रमणो ! भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त होकर विहार करो, भ्रमण करो, विचरण करो ।" जैन और बौद्ध श्रमणों के विहार करने के कारण ही उस प्रान्त का नाम 'विहार' हो गया ।

पुराने युग की बात को छोड भी दें और वर्तमान पर ही दृष्टि डाले तो आज भी सैकडो जैन श्रमण भारत के इस छोर से उस छोर तक पैदल घूम-घूम कर जन-जन के मन मस्तिष्को मे अहिंसा और सत्य की विराट् ज्योति जगाते ही है। उनके पास न घोडा है, न ऊँट, न मोटर है, न वायुयान, न साइकिल है, न टम टम ! फिर भी जैन सस्कृति का सन्त एक गाँव से दूसरे गाँव तक, एक नगर से दूसरे नगर तक, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक अपनी सयम से भरी जिन्दगी की मस्ती मे झूमते हुए हजारो मील की पदयात्रा करके, जन जीवन को आध्यात्मिक और धार्मिक विचारो का प्रकाश देता चला जाता है । वह नगे सिर, नगे पाँव, अपने पोथी पन्ने, वस्त्रपात्र अपने साथ लिए चल पडता है यात्रा के लिए न उसे किसी साथ की चाह होती है और न किसी सवारी की इच्छा होती है। वह गाँवो, नगरो मे अपनी साधु मर्यादा मे रहते हुए भिक्षाचारी करते हुए जन-जीवन के मार्ग की गडवडियो को, गुत्थियो को नैतिक धार्मिक दृष्टि से सुलझा कर आगे वढ जाता है । इसीलिए कहा है—'विहार-चरिया मुणीण पसत्था' विहारचर्या (पैदल चलना) मुनियो

के लिए प्रशस्त है। और विनोबाजी की ओर देखिये ! पैदल घूम घूम कर ही भारत के इस महान् विचारक ने किस प्रकार एक नई अहिंसक विचार क्रांति को जन्म दिया और भूदान से लेकर ग्रामदान तक के विचारात्मक आंदोलन से किस प्रकार दुनिया के दिल दिमाग को हिला दिया यह सूरज की रोशनी की तरह स्पष्ट है। भारत के इस राष्ट्रीय संत ने पदयात्रा द्वारा कमाल कर दिखाया है उससे विदेशी लोग भी देखकर दांतो तले अंगुलि दबाने लगे है। वे भी स्वामित्व विसर्जन की बात को घर-घर और झोंपडी – झोंपडी में पहुचाने के लिए इसी पदयात्रा को अपनाने लगे है। भारत के इस दार्शनिक के पास एक ही आदर्श मंत्र है - चलो चलो ! बढे चलो ! पैदल ! पैदल ! पैदल !

नोआखाली के दंगे के समय महात्मा गाँधीजी ने पदयात्रा को क्या अपनाया था ? उसका कारण यही था कि गाव गाव मे छोटे से छोटे दुखी से दुखी जन की आर्त पुकार को सुन सका जाय ! वाहनो मे बैठकर सपाटे के साथ घूमने वालो से जन सम्पर्क - भारत की असली जनता से सम्पर्क छूट जाता है। और यही कारण है कि भारत की राष्ट्रीय महासभा काँग्रेस को मजबूत बनाने के लिए और काग्रेस के सिद्धान्तो मे जान डालने के लिए कॉंग्रेस के चोटी के नेताओ ने पदयात्रा द्वारा जनसम्पर्क का मार्ग स्वयं अपनाया है और काग्रेसी कार्यकर्ताओ को भी पदयात्रा की योजना अपनाने का दिशा निर्देश दिया है। सचमुच अगर पदयात्रा की योजना सारे भारत के कॉंग्रेसी लोगो ने अपनाली तो निःसन्देह ग्रामीण जनता से सम्पर्क बढ़ेगा, उनके असली दु:ख दर्दों का पता लगेगा और भारत का भाग्य पलट जायगा।

सच पूछिए तो, यात्रा के असली आनन्द की अनुभूति पैदल चलने मे ही है। वाहनो पर लदकर सपाटे से किसी इलाके मे गुजर गए तो वहाँ के जनमानस से कोई परिचय नहीं होता वहाँ की असली स्थिति का कोई पता नहीं लगता और यही कारण है कि साधु वर्ग जनता के जीवन की उलझी हुई गुत्थियो को समझ कर सुलझाने, जन - जीवन मे प्रविष्ट बुराइयो की चिकित्सा करने के लिए और साथ ही अपनी स्वतन्त्रता से साधुता की साधना करने के लिए पादविहार अपनाता है। एक पाश्चात्य विचारक ने तो यही कहा है—

'He travels best, Who travels on foot'

जो पदयात्रा करता है, उसी की यात्रा सर्वोत्तम है। पदयात्रा जीवन में चैतन्य का लक्षण है। इस चैतन्य की अनुभूति वही कर सकता है, जिसे कभी पदयात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त होता हो। प्रकृति के नव—नवीन रहस्यो की झाकी देखनी हो तो पैदल यात्रा उपयुक्त है, शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखना हो तो पैदल चलना हितकर है, ज्ञान और अनुभवो का नया प्रकाश लेना हो तो पैदल विहार करना कल्याणकर है, राष्ट्र के उदय - अभ्युदय और समाज की गति विधि का पर्यालोकन करना हो तो पदयात्रा का आश्रय उचित है, जनता जर्नादन के सुख दु खो मे सहानुभूति दिखाना हो तो पैदल घुमक्कडी अपनाना योग्य है।

भारत के धर्म और दर्शन ही यात्रा को, विचरण को महत्व देते रहे हो, यह बात नहीं है। किन्तु जापान के शिटो धर्म या बुशीडो धर्म ने भी यात्रा के महत्व को स्वीकार किया है। हज का सवाब बतलाने वाले इस्लाम धर्म ने भी इसे स्थान

दिया है और सन के कपड़े पहन कर यरुसलम की पवित्र भूमि तक यात्रा करने वाले ईसाई भक्तों को भी यह अत्यधिक प्रिय है।

भारत के महान् वैदिक धर्म और उसकी शाखाओं—वैष्णव धर्म, शैवधर्म या हिन्दूधर्म ने भी प्रत्येक भक्त के लिए तीर्थ यात्रा का विधान किया है। प्राचीन काल में जब यातायात के आज के से साधन नहीं थे तो लोग पैदल ही तीर्थ यात्रा करने निकलते थे और अनेक ज्ञान विज्ञान का सम्पादन करके लौटते थे।

मानव जीवन की गहनता व वास्तविक जीवन की अनुभूति तथा सांस्कृतिक अध्ययन और नैतिक परम्पराओं का तलस्पर्शी अनुशीलन जो एक घुमक्कड़ कर सकता है उसकी कल्पना वाहन विहारी कभी नहीं कर सकता जितने भी भूगोल के विद्वान् हुए हैं, उन्होंने केवल कल्पना के घोड़े नहीं दौड़ाए हैं अपितु उन–उन स्थानों का स्वयं निरीक्षण परीक्षण करने के बाद ही भूगोल की पुस्तकें लिखी हैं। आप देखेंगे कि जितने भी महान् कवि हुए हैं वे प्रायः घुमक्कड़ थे। कविकुल गुरु कालिदास का नाम आपने सुना होगा। जिनकी महान् कृतियों को देखकर विदेशी विद्वान भी चकित हैं। उनके काव्यों में जो चमत्कार आया है, उसका श्रेय घुमक्कड़ी को है। उन्होंने दवेत हिमाच्छादित हिमालय और सघन हरित तुंगनीप देवदारु की प्राकृतिक सुषमा का जो वर्णन किया है वह किसी से सुना सुनाया नहीं, अपितु स्वयं देखकर ही उन्होंने कहा था—

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं, पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।

रघु की दिग्विजय यात्रा के वर्णन मे जिन-जिन देशो का उन्होने वर्णन किया है, वे प्राय उनके देखे हुए थे, और जो नहीं देखे हुए थे, उनके बारे में उन्होने पूरी जानकारी प्राप्त की थी।

आपने कादम्बरी महाकाव्य का नाम सुना होगा, जिसकी समकक्षता सस्कृत गद्य साहित्य मे आज दिन तक कोई ग्रन्थ नही कर सका है। गद्य गीर्वाण वाणी मे आज तक भी उसके समान अनूठा ग्रन्थ ढूंढने पर भी नही मिल सका है। उसके रचयिता महाकविबाणभट्ट थे, जिनके सम्बन्ध में सस्कृत विज्ञो मे यह लोकोक्ति है - 'बाणोच्छिष्ट जगत् सर्व'; वे पक्के घुमक्कड थे। कितने ही समय तक तीन दर्जन से अधिक काव्यकलाविदो को लेकर भ्रमण किया था। दशकुमार चरित के रचयिता महाकवि दण्डी भी घुमक्कड थे। भले ही काञ्ची में पल्लवराज सभा के वे रत्न रहे हो, फिर भी उन्होने देशाटन खूब किया था।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र आचार्य, वादिमानमर्दन सिद्धसेन दिवाकर, और हरिभद्रसूरि, अभयदेव सूरि आदि जितने भी सस्कृत - प्राकृत साहित्य के उच्च कोटि के लेखक, कवि और व्याख्याता हुए है, वे तो पक्के घुमक्कड थे। जैन साधु होने के कारण भी वे घुमक्कड़ थे ही, साथ ही विविध विचारधाराओ, सस्कृतियो, परम्पराओ, जनरुचियो आदि का पर्याप्त ज्ञान करने के लिए भी वे पादविहारी थे। बृहत्कल्पभाष्य व्यवहारभाष्य मे साधुओ के लिए उग्रविहारी और अप्रतिबद्धविहारी होना आवश्यक बतलाया है, साथ ही विविध देश की भाषाओ, सस्कृतियो, रहनसहन आदि की जानकारी के लिए भी उग्रविहार करना

चाहिए, ताकि वह वहा की जनता को नतिक धार्मिक प्रेरणा उनकी स्थिति परिस्थिति को देख कर दे सके ।

हिन्दी साहित्य के महाकवि देव तो पक्के घुमक्कड थे । घूम-घूम कर ही उन्होंने देश-देश की ललनाओं का चित्र चित्रित किया था । काव्यप्रतिभा के निखार मे देशाटन का महत्त्व कम नही है ।

हाँ, इस तथ्य से इकार नहीं किया जा सकता कि पदयात्रा मे कदम-कदम पर कठिनाइया सामने आती हैं । पदयात्री को प्रतिक्षण कठिनाइयो की कष्टकर मजिल के कठिन दौर मे से गुजरना पडता है । पदल घूमना फूलो का मार्ग नहीं, काँटो का मार्ग है, सुखविलास का मार्ग नही, दु खो का, सकटो का मार्ग है । कष्ट सहिष्णु व्यक्ति ही इस दुर्गम पथ का पथिक हो सकता है । इस मार्ग पर चलते समय कभी-कभी आपत्तियो के पहाड टूट पडते है । कभी कही सत्कार मिलता है तो कभी कही दुत्कार । कभी प्रेम का अमृत मिलता है तो कभी द्वेष का हलाहल जहर । कभी रहने को ऊची अट्टालिकाए मिलती है, तो कभी टूटी फूटी झोंपडी मिलती हैं । 'कभी घी घना तो कभी मुट्ठी चना' वाली कहावत पदयात्री पर लागू होती है । इसीलिए भारत के उस महान् कवि की वाणी मुखरित हो उठी— परदेश कलेश नरेश हु को" परदेश मे नरेश को भी कष्ट मिलता है साधारण मानव की तो बात ही क्या ? सच्चा साधक, सच्चा पदयात्री अपने विहार मे आने वाली कठिनाइयो, विघ्नबाधाओ और तूफानो को देख कर घबराता नहीं, झिझकता नहीं, ठिठकता नही, रुकता नही । वह कठिनाइयो के समय इस शेर से प्रेरणा ले लेता है—

"काट लेना हर कठिन मजिल का कुछ मुश्किल नही ।
इक जरा इन्सान मे चलने की आदत चाहिए ।"

पदयात्रा मे सच्चे साधक में सारी चेतना शक्ति जाग्रत हो जाती है । वह नये - नये आदमियो से, नये नये गाँवो से, नये नये मकानो से और नये नये खान - पानो से साक्षात्कार करता है, तब उसकी विराट् चेतना शक्ति मुस्कराहट के साथ कठिनाइयो का स्वागत करने को तैयार हो जाती है। उसके अन्तर मे कवि की यह वाणी गूंजने लगती है—

"करे खाना बदोशी की खुदा खुद कार सामानी ।
नयी मजिल, नया बिस्तर, नया दाना, नया पानी ।"

इस प्रकार नित्य नूतनता से मनमस्तिष्क को भरकर पदयात्री शेर की तरह आगे बढता जाता है, अपने ध्येय की ओर, अपनी मजिल की ओर। चाहे कितनी ही विघ्न बाधाएँ आएँ, तूफान और आँधियाँ आएँ, किन्तु उसके विचार लडखडाते नही, कदम डगमगाते नही, हिमालय की चट्टान की तरह वह अडिग रहता है।

हाँ, तो भारतीय संस्कृति का घुमक्कड सन्त वैदिक ऋषि के शब्दों मे 'चरन्वै मधु विन्दति' चलने वाला सतत् विचरण करने वाला मधुरता को प्राप्त करता है । जीवन की परम मधुरिमा उसे प्राप्त हो जाती है। वह 'स्वान्तः सुखाय' के लिए ही नही 'सर्वजन सुखाय' सर्वजन हिताय विचरण करता है, परिभ्रमण करता है। वह जहाँ भी जाता है, जिस किसी भी इन्सान के सम्पर्क मे आता है, अगर उसमे कोई रोशनी विद्यमान है, जागने की शक्ति विद्यमान है, शक्तियाँ सोई हुई है, तो वह

अपने प्रयत्न से उन्हें जागृत कर देता है, गतिमान करने का प्रयत्न कर देता है।

जिस मनुष्य की कनीनिका में रोशनी विद्यमान है और उस पर किसी कारणवश मोतिया आगया है तो डॉक्टर आपरेशन करके उस आवरण रूप मोतिये को हटा देता है, जिससे उक्त मनुष्य को पूर्ववत् दिखलाई देने लगता है। किन्तु जिस मानव की कनीनिका में रोशनी नहीं है, वह नष्ट हो चुकी है और उस पर मोतिया आगया है तो डाक्टर के द्वारा मोतिया हटा देने पर भी उस मानव को रोशनी प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि मूल में रोशनी नहीं है तो कितना ही कुशल डाक्टर क्यों न हो वह उसे रोशनी नहीं दे सकता। यही बात साधक के सम्बन्ध में भी है। साधक जहां भी विहार करके जाता है, वहाँ के मानवों में अगर कुछ श्रद्धा है, ग्रहण करने की योग्यता है, साधना की ओर गति करने की तमन्ना है तो वह उनकी आत्मा पर आए हुए मिथ्यात्व मोह या वासना के आवरण को हटा कर उन्हें गति प्रगति करने के लिए रोशनी प्रकट कर सकता है। किन्तु अगर उनमें आगे बढ़ने की तमन्ना ही नहीं है ग्रहण करने की शक्ति ही नहीं है तो वह कुशल साधक चाहे कितनी ही उपदेश रूप औषधियाँ दें, किन्तु मोहावरण या मिथ्यात्व का पर्दा दूर नहीं हो सकता रोशनी प्रकट नहीं हो सकती।

जो स्वयं जागृत है, उसे जगाने के लिए संसार में अनेक निमित्त मिलते हैं। बीज यदि जागृत है उसमें प्राण है, आत्मा है, चलनाशक्ति है तो जमीन कहती है—'अमरराज! जागो, तुम संसार के सर्वस्व हो। लो, तुम्हें मैं अच्छी तरह

से फलने फूलने के लिए जगह देती हूँ। पानी कहता है— 'अन्नदेव ! यह मधुर पानी तुम्हारे लिए तैयार है। तुम इसे पीकर आगे बढो।' हवा कहती है— ससार के प्राण ! तुम्हे गर्मी लगती हो तो मैं पखा करती हूँ, तुम विकास करो।' सूर्य की चिलचिलाती धूप कहती है— "बीज भैया ! तुम तेजस्वी बनो ! मै तुम्हे प्रगति करने के लिए प्रकाश देती हूँ।' किन्तु अगर बीज मुर्दा है, सडा है, प्राण रहित है, स्वय जागृत नही है तो पृथ्वी कहती है— "अरे अन्न के दाने ! निरर्थक ही पडे मेरे शरीर में क्यो सड रहे हो, इस रूप को मिटा दो, गल जाओ, सड़ जाओ, नष्ट हो जाओ, तथा जर्रे - जर्रे मे मिल जाओ।" पानी भी उसे सड़ाने मे सहायक होजाता है। जो पोषक था, वह भी शोषक बन जाता है। हवा भी उसे सूखाने लगती है। और सूर्य का प्रकाश उसे जलाने लगता है। खाद भी उसे अपने मे मिलाने का प्रयास करती है। हाँ तो, जिसमे चेतना शक्ति नहीं है, उसे निमित्त भी विकास करने के लिए सहायक नहीं होता। इसी प्रकार समाज के जिन व्यक्तियो मे जहाँ जागृति है, उपादान शुद्ध है, बीज मे सजीवनी शक्ति मौजूद है तो ऐसे घुमक्कड़ निःस्पृही साधको का निमित्त भी उन्हे प्राप्त होजाता है।

आप जानते है कि धर्मास्तिकाय का गुण चलन है, गति लक्षण वाला है, किन्तु जब हम चलेगे, गति करेंगे तभी वह सहायक होता है। यदि हम स्थिर है तो वह हमे चला नहीं सकता। मछली चलती है तो पानी उसे मदद दे देता है। इसी प्रकार आप जीवन के किसी भी क्षेत्र मे धर्म दृष्टि से गति प्रगति करना चाहेंगे तो हमारी धर्ममय प्रेरणा उसमे मिलेगी ही।

वास्त मे गति करना ही जीवन का लक्षण है । जिस जीवन म गति नहा ह, स्पन्दन नही ह सचरण नही ह, वह जीवन मुर्दाजीवन ह । इसीलिए जीवन का विश्लेषण करत हुए जयशकर प्रसाद न कहा ह—

"इस जीवन का उद्देश्य नही है, शान्ति भवन मे टिक रहना ।
किन्तु पहुचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नही ।'

हाँ तो जीवन का सही विकास करना हो तो गति प्रगति करिए । 'चर' धातु से ही आचार विचार सचार प्रचार, उच्चार उपचार आदि शब्द बनते हैं । इन सबके मूल मे चलना ह, चर क्रिया ह । आप भी अपने जीवन मे 'चर' को स्थान दीजिए, घबराइए नहा, आपका व्यक्तित्व चमक उठेगा आपका विकास सर्वतोमुखी हो सकेगा आपकी प्रतिभा चहुँमुखी खिल उठेगी । आपके मनमस्तिष्क का प्रवाह इसी ओर मोडिये । श्रमण सस्कृति का आकर्षण इसी ओर रहा ह । चरवेति चरवेति ! चले चलो ! बढे चलो !!

......आठ

विवेक का प्रकाश

हमारे जीवन का ताना वाना आज से नहीं अनन्त अनन्त काल से उलझा हुआ है। उसे सुलझाने के लिए आर्यावर्त्त के महामानव महावीर ने हमे एक महत्त्वपूर्ण दृष्टि दी। उन्होने कहा—"साधक, तेरा मार्ग विवेक के चमचमाते हुए प्रकाश से प्रकाशित हो। तू संसार की अन्धेरी गलियो मे भटकते समय विवेक का टार्च अपने पास रख, जिसके मगलमय प्रकाश मे तू यह देख सके कि कहाँ विषय वासना का गर्त्त है और कहाँ क्रोध-लोभ की भयकर चट्टाने है, कहा मोहमाया का फिसलना कीचड है और कहाँ पर मान का काला सर्प फुफकार रहा है? जहाँ तक तेरे अन्तर्मन मे विवेक की ज्योति जगमगाती रहेगी, वहाँ तक तू विपय वासना के गर्त में नही गिरेगा, और न क्रोध लोभ की चट्टान से ही टकरायेगा। उठना, वैठना, खाना, पीना, सोना आदि तेरी समस्त दिन चर्या यदि विवेक के प्रकाश में होती है तो तुझे पाप कर्म के वन्ध का लेप नही लग सकेगा। यदि विवेक का दीपक गुल हो गया है तो जीवन का प्रत्येक कम्पन पापकर्म को पैदा करेगा। आचार्य कुन्दकुन्द ने एक स्थान पर वताया है कि "द्रव्य त्याग,

द्रव्य पूजा द्रव्य माला द्रव्य जप–तप' आदि साधनाएँ विवेक के अभाव मे किसी काम की नही है । व विवक शून्य होने के कारण माधक की आत्मा को ससार की नाना योनियो मे भटकाती रहती हैं उन साधनाओ स आध्यात्मिक जीवन का विकास नहीं होता ।

जन धम विवक प्रधान धम है । यहाँ धम क व्याख्या कारो न प्रत्यक साधना का, चाह वह लघु हो चाह महान, चाहे स्वल्प हो चाह विराट चाहे छोटी हो, चाहे बडी, उन्हें व विवक की कसौटी पर कसकर देखत है । जिस साधना म विवक है वह सम्यक साधना है, शुभ योग वाली साधना है और जिसमे अविवेक है, वह असम्यक और अशुभ योग वाली है । शुभ योग वाली माधना जहाँ पाप को नष्ट करती है वहाँ अशुभ योग वाली साधना पाप को बढाती है जन्म मरण के कुचक्र म फसाती है । विवक का जितना विश्लेषण जितना मनन चिन्तन और जितनी व्याख्या जन दशनकारो ने की है उतनी शायद ही किसी दूसर दशन ने की हो । फिर उस विवेक का नाम चाहे विभिन्न युग के दशनकारो ने विभिन्न रूप मे प्रस्तुत किया हो । शास्त्रकारो ने अपने युग म इस 'यतना या 'यत्नाचार कहा है । और जयणा धम्मस्स जणणी कहकर इस धम की माता कहा है । आचाराग सूत्रकार ने स्पष्ट रूप स कहा है— विवेगे धम्ममाहिए विवेक म ही धम निहित है । जहाँ विवक है वहाँ धम है, जहाँ विवेक है वहाँ पाप है । कहीं विवक के स्थान म 'प्रतिलखना शब्द का प्रयोग किया है कहीं 'जागरण' शब्द कहीं 'अप्रमाद' शब्द का प्रयोग किया है किन्तु घुमा फिराकर अथ सबका एक ही होता

है । निशीथसूत्र के भाष्यकारने जगत के सभी मानवों के सामने जागरण का उद्घोष किया है.—

'जागरह नरा ! णिच्च जागरमाणस्स वड्ढती बुद्धी ।
जो सुवति णसो सुहितो, जो जग्गति सो सया सुहितो '

हे मनुष्यो ! जागृत रहो ! जो नित्य जाग्रत रहता है उसकी विवेकबुद्धि बढती रहती है । जो प्रमाद में सो जाता है, वह ज्ञानादि धन के योग्य नही रहता, ज्ञानादि धन का पात्र वही होता है जो जाग्रत रहता है ।

भगवती सूत्र मे राजकुमारी जयती ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया, उसका बडा रोचक और मार्मिक वर्णन है । जयती राजकुमारी भ. महावीर से पूछती है—"भगवन् ! सोते रहना अच्छा है या जागते रहना अच्छा ? सोते रहना श्रेष्ठ है या जागते रहना ?" भगवान् ने उत्तर देते हुए कहा—"जयती! अत्थेगइयाण जीवाण सुतत्त साहू, अत्थेगइयाण जीवाण जागरियत्त साहू ।" जयती ! कई जीवो का सोते रहना अच्छा है, कई जीवो का जागते रहना अच्छा !" जयती पुन तर्कसगत भाषा मे पूछती है— "भगवन्, आपकी इस पहेलीमय भाषा को, दुविधाभरी वात को मै समझ नहीं सकी, आप किस आशय मे ऐसी दुहरी वात फरमा रहे है ?" भ. महावीर ने कहा—"जयती, मै एक ही वात कह रहा हूँ, और वह कह रहा हूँ विवेक की भाषा ये ।, प्रत्येक सिद्धान्त के दो पहलू होते है । सच्चाई दोनो तरफ होती है । जो एक ही पहलू से चिपका रहता है, वह अविवेकी है । तुम दोनो पहलुओ से समझो कि सोने वाला क्यो अच्छा है ? जो दूसरो की भलाई के लिए, हित के लिए सोता है, विश्राम करता है, तो उसका

सोना अच्छा है क्योंकि उसका वह विश्राम, शयन भलाई के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए होता है। किन्तु जो दूसरों को कष्ट देने के लिए, सेवा से जी चुराने के लिए सोता है उसका सोना अच्छा नहीं है। जो परोपकार के लिए सेवा के लिए स्वाध्याय के लिये जागता है, उसका जागना श्रेष्ठ है और जो बहू बेटियों की लाज लूटने के लिए, दूसरों की छाती पर मूंग दलने के लिए, दूसरों की हिंसा करने के लिए जागता है उसका जागना अश्रेष्ठ है। मतलब यह कि अविवेकी का सोना और जागना दोनों बुरे हैं।'

सोने और जागने की क्रिया की तरह प्रत्येक क्रिया में विवेकी का पढ़ना लाभदायक होगा हितकर होगा और अविवेकी का पढ़ना अहितकर होगा। विवेकी साधक प्रतिलेखन करता हुआ कर्मबंधन काटने वाला होता है और अविवेकी प्रमादी साधक प्रतिलेखन करता हुआ भी कर्मबंधन करता है। देखिए उत्तराध्ययन सूत्र का यह पाठ —

> 'पुढवी आउक्काए तेऊ वाऊ वणस्सइ तस्साण
> पडिलेहणापमत्तो छण्हं पि विराहओ होइ।

प्रतिलेखना जैसी विशुद्ध धार्मिक क्रिया के द्वारा षटकाय के जीवों की विराधना करता हुआ अविवेकी पापकर्म का उपार्जन करता है। उसकी साधना में कदाचित् विवेक का अंश आ भी जाय तो वह 'घुणाक्षरन्याय' की तरह वास्तविक विवेक नहीं है।

विवेक जिस मानव में आ जाता है उसके जीवन का नक्शा ही बदल जाता है, उसका रहन सहन, उसकी बातचीत, उसकी गति विधि सब बदल जाती है। ऐसा मानव विवेक के

आलोक में अपने प्रत्येक कार्य का, प्रत्येक विचार का, प्रत्येक उच्चारण का निरीक्षण परीक्षण करता है, तब ही वह मानव समाज के सामने प्रगट करता है। विवेक वह जादू है, जो एक बार किसी के हाथ लग जाने पर उसके जीवन को आमूलचूल परिवर्तन कर देता है। इसी लिए भारतीय मनीषी ने विवेक का माहात्म्य बताते हुए कहा है :—

'एक हि चक्षुरमलं सहजो विवेक
तद्वद्भिरेव सह संवसति द्वितीयम्
एतद् द्वयं भुवि न विद्यते यस्य सोऽन्ध.
तस्यापमार्ग चलने खलु कोऽपराध ?'

'पहला और पवित्र नेत्र सहज विवेक है, अगर यह किसी के पास न हो तो दूसरा नेत्र है विवेकवानों की संगति करना। अगर इन दोनों मे से कोई भी नेत्र जिसके पास नहीं है, वह वास्तव मे द्रव्य चक्षुओ के रहते हुए भी अन्धा है। और ऐसा व्यक्ति यदि बुरे मार्ग पर चलता है तो उसका इसमे अपराध ही क्या है ?'

सचमुच, विवेक सत्यासत्य का परीक्षण करने वाला दिव्य नेत्र है। हेय क्या है, ज्ञेय क्या है, उपादेय क्या है, कर्त्तव्य क्या है, अकर्त्तव्य क्या है, अच्छा क्या है, बुरा क्या है, उपयोगी क्या है, अनुपयोगी क्या है, भक्ष्य क्या है, अभक्ष्य क्या है ? विवेकी पुरुष इन सब बातो का शीघ्र ही निर्णय कर लेता है। उसकी दृष्टि हँस जैसी होती है। हँस की चोंच मे एक विशेषता होती है कि वह चोंच डाल कर दूध और पानी को अलग - अलग कर देता है। साधक भी विवेक की चोंच से सद् असद् का पृथक्करण कर लेता है और असार को छोड कर सार भाग को ग्रहण

कर लेता है। किन्तु अविवेकी की दृष्टि कौए जैसी होती है उसके लिए कलाकन्द और विष्ठा दोनों एक समान हैं।

गन्ने को पशु भी खाता है और मनुष्य भी खाता है किन्तु उन दोनो के खाने मे अन्तर है। मनुष्य गन्ने को चूसकर सार तत्त्व को ग्रहण कर लेता है और निस्सार को फेंक देता है, किन्तु पशु मे पृथक्करण करने की शक्ति नही है। विवेक का अभाव होने से वह निस्सार को भी पेट मे डालता है। मानव और पशु मे यही अन्तर है। पशु हजारो वर्ष पहले से जिस तौरतरीके से रहता आया है, जिस तरह से, जिस चीज को खातापीता आया है, वह उसी तौर तरीके से, उसी तरह से, उसी चीज को अबतक खातापीता चला आरहा है उसने उसमे कोई रद्दोबदल परिवर्तन परिवर्द्धन या संशोधन नही किया है। यही कारण है कि पशुओं की कोई संस्कृति नही होती सभ्यता नहीं होती समाज नहीं होता। मनुष्य ने हजारो वर्षों मे अपने रहन सहन के तौर तरीकों मे काफी संशोधन – परिवर्द्धन रद्दोबदल कर दिया है, उसने विवेक के छानबीन करके सार भाग को रखा है और असार को छोड़ दिया है। संस्कृति, सभ्यता और समाज के रहनसहन के ढांचे मे मानव जाति ने काफी परिवर्तन किया है और यह सारा परिवर्तन उसने अपने विवेक के बल पर किया है। इसीलिए गीर्वाणवाणी के यशस्वी कवि ने विवेक से रहित व्यक्ति को भी पशु की उपमा दी है। मानव के चोले मे, मानव की आकृति मे भी अगर मानवता की भावी नहीं है, इसानियत की प्राणवायु नहीं है, विवेक की ज्योति जागृत नहीं हुई है तो ऐसा मानव चेहरे से भले ही मानव

कहलाए, प्रकृति मे मानव नही है। विवेक ही ऐसे मानवाकृति प्राणी को मानव बना सकता है।

एथेंस के प्रसिद्ध बाजार मे एक महान् दार्शनिक डायोजिनिस सूर्य की चिलमिलाती धूप मे दीपक लेकर घूम रहा था। लोगो ने उनकी ओर आश्चर्य भरी मुद्रा मे देख कर पूछा—"जनाव ! इस समय तो सूर्य का प्रकाश जगमगा रहा है, फिर आप दीपक को लेकर क्यो घूम रहे है ?" उन दार्शनिक ने मुसकराते हुए कहा—"मानव की तलाश में।' इस उत्तर को सुन कर लोग खिलखिला कर हंस पडे। दार्शनिक ने गम्भीरता पूर्वक कहा—"जिसमें विवेक की रोशनी नहीं जल रही है, वे मानवाकृति मे पशु है, जो हजारो की सख्या मे इधर से उधर घूम रहे है, मुझे ऐसे मानवो की आवश्यकता नही है। जिसमे विवेक का प्रकाश जगमगा रहा हो, उसे ही मैं सच्चा मानव मानता हूँ और उसी की तलाश मे दिन में भी दीपक लिए घूम रहा हूँ। जिस इन्सान मे विवेक नहीं है, वह इन्सान नहीं हैवान है।" दार्शनिक ने बडी गहरी बात कही है, जो आज भी मशाल के रूप मे चमक रही है।

नीतिकारो ने कहा—"विवेक दशमो निधि" विवेक दसवीं निधि है। निधि को प्राप्त करने के लिए मानव दिन रात अथक परिश्रम किया करता है, दौड़ धूप करता है, उखाड - पछाड करता है, किन्तु वह जिस निधि के लिए इतना आकुल - व्याकुल होता है, वह तो क्षणिक है, नाशवान है। विवेक सच्ची और स्थायी निधि है। जिस इन्सान को विवेक रूपी निधि प्राप्त हो गई है, उसके लिए अन्य निधियाँ तुच्छ है, नगण्य है। जिस समय साधक के हृदय मे विवेक का प्रकाश जागृत हो

जाता है, उस समय उसका जीवन निराला ही बन जाता है। घर में, समाज में, देश में राष्ट्र मे प्रत्येक जगह उसका आदर होता है प्रतिष्ठा होती है। कहा भी है—"विवेकी कस्य न प्रिय' (विवेकी किसे प्यारा नहीं होता ?) विवेकी जहाँ भी जाता है अपने विवेक की खुशबू फैला देता है जिससे आकृष्ट होकर गुणग्राहक जनसमुदाय रूप भ्रमर अनायास ही आ पहुँचते हैं।

जिसमे विवेक का प्रकाश फैल जाता है, वह सारे ससार को अपना आत्मीय समझने लगता है, सारे ससार के साथ वह एकरूपता स्थापित कर लेता है। जिसे विवेक की सजीवनी बूटी मिल जाती है उसे जीवन का मोह और मृत्यु का शोक नहीं सताता। वह आत्मा–अनात्मा का भेद विज्ञान कर लेता है जिसे अन्य दर्शनकारों ने विवेक ख्याति कहा हैं। इतना उत्तम विवेक प्राप्त होने पर ससार की तुच्छ वस्तुओं मे, नश्वर पदार्थों मे उसकी आसक्ति छूट जाती है वह सभी कुटुम्बियों, समाज–राष्ट्र के लोगों से व्यवहार करता हुआ भी अन्तर से निर्लिप्त और अनासक्त रहता है। जैन कवियों ने उस स्थिति का रूपक देते हुए कहा है—

> 'रे रे समदृष्टि जीवडा करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
> अन्तर से न्यारा रहे, ज्यो धाय खिलावे बाल।'

समदृष्टि–विवेक दृष्टि वाला जीव कुटुम्ब का प्रतिपालन करता हुआ भी अन्तर में उसी प्रकार अलग रहता है जैसे एक धाय दूसरों के बच्चों को उसी प्रेम से खिलाती है पिलाती है पालन पोषण करती है किन्तु अन्तर से वह यह समझती

है कि यह बालक मेरा नहीं है । मैं तो इसका प्रतिपालन करने वाली हू ।

चम्पानगरी के विराट् मैदान में विहार का महान् मेला था । मेले के लिए खूब धूमधाम से तैयारियाँ की जा रही थीं । सहस्रों नर नारी उसे देखने के लिए दूर दूर से बरसाती नदी की भाँति उमड रहे थे । एक बहिन जिसका नाम गौतमी था, अपने प्यारे लाल को लेकर पुष्पवाटिका मे पहुची, फूल चुनने के लिए । आज उसके हृदय मे आनन्द की हिलोरें उठ रही थी । फूलो की विक्री का यह सुनहरा अवसर साल भर मे एक ही बार आता था । वह पुष्पशय्या पर अपने प्यारे लाल को सुलाकर फूल चुनने मे मग्न थी । कभी वह फूलो की सुन्दरता की तुलना अपने प्यारे लाल से करती तो कभी फूलो की कोमलता के साथ उसकी तुलना करती ।

इतने मे ही निकटवर्ती लताकुञ्ज मे से एक काला भयकर विषधर निकला और गौतमी के सोये हुए प्यारे लाल को उसने डस लिया । बडी तीव्रता से हलाहल जहर बालक के सारे शरीर मे फैल गया और वह मर गया । गौतमी ने आकर बालक को देखा तो उसके होश हवास खतम होगए, वह फूल चुनना भूलकर, फूलो की टोकरियाँ दूर फैंक कर फूट-फूट कर रोने लगी ।

माता की ममता माता ही जानती है । पुत्र मा का कलेजा होता है । मा स्वय दु ख सहन करती है किन्तु अपने प्यारे लाल को दु खी नही देखना चाहती । वह स्वय गली-सडी भूमि पर सोना कबूल करती है, किन्तु प्यारे लाल को मखमल के मुलायम गद्दो पर सुलाना चाहती है । वह स्वय फटे पुराने चीथडे

पहन कर अपने शरीर की लज्जा रख सकती है परन्तु अपने लाल को बढ़िया वस्त्रों से वेष्टित देखना चाहती है। कितना स्नेह होता है माता का पुत्र के प्रति ? वह उसकी आशा का दीपक होता है। किन्तु गौतमी का एक मात्र आशादीपक आज बुझ गया है। वह उस बुझे हुए कुलदीपक को ममतावश छाती से चिपटा लेती है। आज उसके हृदय की सारी आशाओं के टुकड़े-टुकड़े होगये। महान् आघात पहुँचा उसके हृदय को और वह पागल सी होगई। ममतावश उसने अपने प्यारे लाल की लाश को उठाई और पहुँची मन्त्रवादियों के पास। 'अये मन्त्रवादियो! तुम अपने मन्त्रों पर गर्व करते हो! जरा अपने मन्त्र के प्रभाव से मेरे पुत्र को ठीक करदो।' वैद्यों के पास पहुँची और बोल उठी—' ऐ वैद्यो! मेरे लाल को ऐसी दवा दो जिससे उसकी मूर्च्छा दूर होजाय। फिर ज्योतिषियों के पास पहुँची और कहा—" ए ज्योतिषियो! मेरे लाल के ग्रह देखो यह क्या नहीं बोल रहा है ? इसे क्या होगया है ?' तत्पश्चात् देवी देवताओं की भी मनौतियाँ की, किन्तु सभी बेकार हुई। बच्चे की लाश सड़ गई। उसमें बदबू आने लगी। तो भी गौतमी उसे गले लगाकर गलियों-गलियों में, मोहल्लों में, बाजारों में, चौराहों में घूमने लगी। लोग चिल्लाते और धिक्कारते हुए कहते— अरी पगली, तेरा पुत्र मर गया है। इसकी नस नस में जहर फैल गया है। किन्तु उनकी बात अनसुनी करते हुए वह कहती— " मेरा पुत्र क्या मरेगा ? यह तो सोया हुआ है, तुम्हारा मरा होगा।

"यहाँ हमने को सब हमने हैं बेचारों की किस्मत पर।
मगर रोना नहीं आता, बेचारों की किस्मत पर॥"

दुनिया बडी दुरगी है । यहाँ रोने वालो के साथ सब रोने लगते है, उसका दुःख मिटाने का प्रयत्न नही करते । दुनियावालो से गौतमी घबरा उठी थी । उसे निराशा हो गई थी । इतने मे एक आवाज आई । चपानगरी के उद्यान में एक शास्ता आया है, नेता आया है,, सर्वज्ञ सर्वदर्शी आया है, वीतरागी आया है, अमृत पिलाने वाला आया है, वह अमृत देता है, सजीवनी देता है । उसकी वाणी मे एक जादू है, जो मुर्दों को जिन्दा कर देता है । गौतमी ने सुना । उसकी आँखो मे एक नई चमक आगई । उसका हृदय कमल खिल उठा । जहाँ महात्मा बुद्ध ठहरे हुए थे, वह वहाँ पहुँची । सभासदो ने उसे आगे बढने से रोका । बोले—"इस मडान को लेकर आगे कहाँ जा रही है तू ।" महात्मा बुद्ध की करुणा आर्द्र हो उठी । उन्होने सभासदो से कहा— "यह दुखिया अबला है, इसे रोको मत, आने दो। यहाँ इसे प्रकाश मिलेगा, यह अपने जीवन को चमकाएगी ।" बस, फिर क्या था । गौतमी आगे बढी और महात्मा बुद्ध के पवित्र चरणो मे अपने इकलौते पुत्र को रखकर करबद्ध हो कर बोली—"ऐ शास्ता ! इसे पीयूष दो, अमृत दो, सजीवनी दो, जिससे यह मेरा इकलौता लाल ठीक हो जाय ।" बुद्ध ने सान्त्वना देते हुए कहा—"ठहरो माता ! मै शीघ्र ही तुम्हारे लिए सतोष जनक कार्य कर दूगा ! पर एक शर्त है ! तुम ऐसे गृहस्थ के घर से मुझे एक मुट्ठी भर सरसो ला दो, जिसके यहाँ कोई मरा न हो।" गौतमी प्रसन्न हो गई । उसे आशा की एक किरण मिल गई । वह भागी और ऊँची अट्टालिकाओ मे गई, राजप्रासादो मे गई, सोने के सिहासनाधीशो से कहा—"मैं तुम्हारे द्वार पर भिक्षा के लिए आई हूँ, क्या तुम मुझे मेरे पुत्र के लिए भिक्षा दोगे ?" उन सेठो ने, सामन्तो ने कहा—

"हा, गौतमी । यदि तुम्हारा पुत्र ठीक होता हो तो उसके लिए चाहे जितना सोना ले लो, चादी ले लो जवाहरात ले लो, जो चाहो सो माग लो ।' गौतमी ने कहा— मुझे सोना चाँदी, जवाहरात नहीं चाहिए। शास्ता ने कहा ह कि जिसके घर मे कोई भी न मरा हो उस घर से एक मुट्ठी सरसा ले आओ, मैं तुम्हारा पुत्र ठीक कर दूगा ।' यह सुनते ही किसी ने अश्रुकण बरसाते हुए कहा— गौतमी मेरा बीस वय का नौजवान पुत्र मर गया है। किसी ने कहा—'मेरा प्राण प्यारा पति मर गया है।" वह सोने के महला को छोड कर बास की झोंपडिया मे पहुँची किन्तु उस मुट्ठी भर सरसा नहीं मिली । क्योंकि ऐसा कोई घर न था, जहां किसी की मत्यु न हुई हो । आखिर निराश हो कर गौतमी वहां से उलटे परा लौटी और महात्मा बुद्ध से कहने लगी—'भगवन् ! मैं बडी अभागी हू । मैंने सारे नगर मे घर घर की खाक छान ली, लकिन कोई भी ऐसा घर न मिला जहाँ किसी की मौत न हुई हो । इसी कारण मुझे निराश हाकर एक मुट्ठी सरसा के बिना खाली हाथ लौट आना पडा है । बुद्ध ने कहा—'अच्छा गौतमी ! जब सभी घरा म कोई न कोई मरा है तो तेर साथ कौनसी नई बात हो गई । यह ता जगत् का नियम है । जो जन्म लेता है वह एक दिन अवश्य ही मरता है । जो फूल खिलता है वह अवश्य ही मुरझाता है, जो सूय उदय होता है, वह अवश्य ही अस्त हाता है । जन्म लेकर यदि कोई चाहे कि म मरू नहीं यह सवथा असम्भव है । भर काल का कुचक्र सारे ससार के प्राणिया पर घूमता ही रहता ह । ससार की कोई भी शक्ति उस रोक नहीं सकती । इसका आगमन निश्चित ह । फिर तेर बालक पर काल की क्रूर दृष्टि पड गई तो

तू इतनी परेशान क्यो हो रही है । तू ने अपना कर्त्तव्य निभाया है और अब अपना कर्त्तव्य सम्भाल । मोह करके वृथा दुःख से पीडित होना बेकार है ।" तुझे अपना भविष्य उज्ज्वल बनाना चाहिए और पुत्र की मृत्यु से शिक्षा लेनी चाहिए कि मुझे भी एक दिन मरना पडेगा, इसलिए जितना जल्दी जो कुछ सत्यकार्य कर सकू कर लेना चाहिए ।

महात्मा बुद्ध की हृदय स्पर्शिनी वाणी सुन कर गौतमी का मोह सुषुप्त मन उद्बुद्ध हो उठा, उसकी अन्तर्दृष्टि खुल गई । उसका मोह पलायन हो गया, चिन्ता दूर हो गई । उसने शीघ्र ही अपने पुत्र की लाश उठाई और जला कर अपने भावी जीवन को उज्ज्वल बनाने को उद्यत हो गई । पुन. महात्मा बुद्ध की सेवा मे पहुँच कर उसने—"बुद्ध शरण गच्छामि, संघ शरण गच्छामि, धम्म शरण गच्छामि" इस त्रिसूत्री मन्त्र को अंगीकार किया और बौद्ध सघ मे स्वय को भिक्षुणी बनाने की प्रार्थना की । गौतमी की प्रार्थना पर महात्मा बुद्ध ने उसे बौद्धसंघ मे दीक्षित की और यही गौतमी आगे चल कर बौद्ध संघ का प्रचार प्रसार करने वाली बनी । विवेक का महा प्रकाश गौतमी को मिल चुका था, फिर ससार की कमनीय वासनाएँ उसे कैसे लुभा सकती थी ?

मित्रो ! विवेक की इस महा ज्योति को प्राप्त करो ? विवेक हर क्षेत्र मे आपका पथ प्रदर्शन करने वाला सच्चा मित्र है । चाहे आप धार्मिक क्षेत्र मे हों, चाहे आध्यात्मिक क्षेत्र मे, चाहे सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक क्षेत्र मे हो सर्वत्र विवेक का प्रकाश काम देने वाला है । धर्म तत्त्व की समीक्षा करने, उसका चुनाव करने के लिए भी भगवान् महावीर ने कहा—

'पन्ना समिक्खए धम्म तत्त"

अपनी सद् असद् विवेकशालिनी बुद्धि से धर्मतत्त्व की समीक्षा करो ।'

शास्त्र अपने आप मे प्रकाश देने वाले है किन्तु शास्त्र का अर्थ तो अपनी बुद्धि से ही निर्णीत करना होगा, सोचना होगा । इसीलिए नीतिकारों ने कहा—

"यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किं ?
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ।"

जिसके पास अपनी विवेक बुद्धि नहीं है शास्त्र उसका क्या उद्धार करेंगे ? आंखो से अन्धा हो तो दर्पण उसके लिए क्या काम देगा ?

सचमुच, हमें अपनी विवेक बुद्धि से काम करने का अभ्यास करना चाहिये । जब हम बुद्धि को पराश्रित बना देते हैं, आत्मविश्वास खोकर स्वयं को विवेक बुद्धि से नहीं सोचते हैं तो दूसरा आदमी हमारी परिस्थिति से वास्तविक रूप से अनभिज्ञ होने के कारण विपरीत सलाह भी दे सकता है, हमारी बुद्धि को कुण्ठिया के चक्र मे डाल सकता है ।

अतः आज संसार के हर क्षेत्र मे विवेक का साम्राज्य होना चाहिये उसे ठुकरा कर कोई भी धर्म, दर्शन या विचारधारा आगे नहीं बढ़ सकी और न बढ़ सकेंगे ही इसलिए विवेक की मानव जीवन मे पहली और सब प्रथम अनिवार्य आवश्यकता है । इसे अपना कर ही जगत को स्वर्गीय सुखों का भण्डार बना सकते है इसे अपना कर ही नरक के समान बनाने वाली परिस्थितियों को स्वर्गोपम बना सकते हैं, इसे अपना कर ही पशुत्व से मानवत्व और देवत्व की ओर बढ़ा जा सकता है ।

संयम का माधुर्य

भारतवर्ष कृषि प्रधान ही नहीं, ऋषि प्रधान देश रहा है। यहाँ अनेक आत्मद्रष्टा ऋषि—महर्षि आये, सन्त—महन्त आये, जो स्वय भी सयम साधना तथा तप आराधना और मनोमन्थन करके आगे बढे और दूसरो को भी अपने पवित्र - चरित्र के द्वारा तथा तप पूत वाणी के द्वारा उस प्रगति की राह पर बढने की प्रेरणा दी। वे स्वय प्रकाश पुञ्ज थे। प्रकाश को प्रकाशित करने के लिए दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नही होती। यदि स्वय मे प्रकाश नही है तो वह दूसरो को प्रकाशित नही कर सकता। भारतीय द्रष्टाओ की वाणी हमे इसीलिए प्रकाश दे सकी कि उनके स्वकीय जीवन मे सयम की ज्योति जगमगा रही थी।

सयम का अर्थ है—आत्म निग्रह करना, मन, वचन और शरीर का नियमन करना, इन्द्रियो को अधिकार मे रखना। दूसरो पर अधिकार करना सरल है, किन्तु अपने आप पर शासन करना कठिन है। एक पाश्चात्य दार्शनिक ने कहा है कि—"सबसे शक्तिशाली व्यक्ति वह है जो अपने आपको अपने अनुशासन मे रख सकता है।" जो अपने आपको अनुशासन

मे नहीं रख सकता है, वह व्यक्ति कभी सुखी नही हो सकता । सुख का मूल मन्त्र है—अपने आपको अनुशासन मे रखना । भगवान महावीर ने इसी दृष्टि से अपने अन्तिम प्रवचन मे कहा—

"अप्पा चेव दम्मेयव्वो, अप्पा हु खलु दुदम्मो ।
अप्पा दंतो सुही होई अस्सिं लोए परत्थ य ।"

'अपनी आत्मा का, अपने मन, इन्द्रिय और वाणी का दमन करना चाहिए । वास्तव मे अपने आपका दमन करना दु साध्य है । जो अपने आपका दमन कर लेता है वह इस लोक और परलोक दोनो मे सुखी होता है ।

आज जगत के रगमच पर जितने भी राष्ट्रवादी, धर्मवादी, समाजवादी या पूजीवादी नेता, तथा विशिष्ट व्यक्ति आते है सभी दूसरो को दमन करने का, दूसरो पर शासन जमाने का दूसरो पर अधिकार करने का प्रयत्न करते दिखाई देते है । यह रोग भारतवर्ष मे काफी भयकर रूप मे फैल गया है । दूसरो पर अकुश रखने के लिए तरह-तरह के हथकण्डे तैयार किये जाते हैं पापपणापत्र निकाले जाते हैं सेनाएँ सजी जाती हैं शस्त्रास्त्र की तैयारी की जाती है परन्तु अपने पर अकुश रखने के लिए कोई विरला ही तैयार होता है । समाज मे धर्म सम्प्रदायो मे व्यापारिक जगत मे, राष्ट्रो मे तरह-तरह के कानून कायदे जनता पर लादे जाते हैं जिनका सम्बन्ध जनता के सुख से जनता के हित से नहीं होता उनका सम्बन्ध होता है स्वार्थी नेताओ के निजी स्वार्थ से, अपनी प्रतिष्ठावृद्धि से अपनी उच्चता का ढिंढोरा करने से । जनता के वास्तविक

हित को लक्ष्य मे रख कर जो नियम या कानून कायदे बनाये जाते है, उनका पालन स्वेच्छा से होता है, उनका पालन नेता स्वय पहले करते है, तभी उन नियमो में तेजस्विता आती है, वे सुखकर बनते हैं। पर क्या कहे ! आज तो सर्वत्र उलटी गगा वह रही है। जिधर देखो उधर लदे हुए अनुशासन और दमन का चक्र तीव्रगति से चल रहा है।

अनुशासन को सयम का रूप देने वाले महाशय यह भूल जाते है कि सयम स्वेच्छाकृत होता है, परवशीकृत नहीं। अगर ऊपर से लदे हुए अनुशासन को ही सयम कहा जायगा तो जेल मे कैदियो द्वारा लिया जाने वाला काम या भूखे रहना भी सयम ही कहलायगा। एक गरीबी की मार से मरे जाते हुए व्यक्ति का भूखो रहना, फटे कपडे या कम कपडे रखना, नानाविध कष्ट सहना भी तो फिर सयम ही होगा ? इसी प्रकार वेतन भोगी सैनिको पर किया जाने वाला ऑर्डर और मालिको द्वारा नौकरो पर किया जाने वाला अकुश भी सयम की कोटि में क्यो नहीं गिना जायगा ?

सचमुच आज सयम शब्द वहुत ज्यादा इज्जत पा कर ऐसा फूल उठा है कि उसके लिए अब स्थान, काल, कारण, अकारण कुछ भी नही रह गया है। उसके उच्चारण मात्र से सम्मान के बोझ से भारतीय मनमस्तिष्क झुक जाता है इसलिए आज सयम शब्द पर बहुत गहराई से विचार करना चाहिए। बहुत से लोग बहुत दिनो से कोई एक बात कहते आ रहे है, इसलिए वह बात सत्य नही मानी जा सकती। आज भारतीय जन जीवन मे सयम शब्द नाम मात्र को रह गया है। अगर सयम होता तो भारतीय जन - जीवन सुखी होता, समृद्ध होता

परिश्रमी होता आनन्द के चमन मे गुलजार करता। परन्तु आज भारतीय जन जीवन पाश्चात्य सस्कृति की चकाचौंध पडकर विलासिता की गदी गलिया म भटकने लग गया है इन्द्रियदासता के अनुराग मे पड गया है भोगा के चक्कर म पडकर आत्मभान खो वठा है, परिग्रहवाद की भूल भुलया मे पडकर एक दूसर के साथ छीना झपटी करन लग गया है अब्रह्मचय के विनाशकारी माग पर सरपट दौड लगा रहा है फिर इस हम 'सयम धम कह सकते हैं ? बाह्य तपस्याएँ करक काई धमसम्प्रदायवादी सयम का ढोल दिखाना चाहे, किन्तु जहाँ रसना विजय सेवा, स्वाथत्याग, आदि अभ्यन्तर तप न हो, वहाँ बाह्य तपस्या द्वारा सयम अथहीन सा है, प्रदशन है। सयम जहाँ अथ हीन है वहा निष्फल आत्म पीडन है और उसी को लेकर अपने को वडा मानना भी आत्म वञ्चना हो सकती है।

इसलिए जिस राष्ट्र देश, जाति धम या समाज मे सयम होता है, वह राष्ट्र देश जाति धम या समाज कभी दु खी पतित और अवनत नहीं हो सकता है। गिब्बन ने रोम का इतिहास लिखते हुए एक जगह लिखा है– रोम का उत्थान सयम से सादगी स और मित व्ययता स हुआ और पतन हुआ है विलासिता से, असयम स, फिजूल खर्ची से।'

सन् १६३२ मे उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने अपने एक भाषण मे कहा था– सयम् मे शक्ति है और शक्ति ही आनन्द की बुनियाद ह। जो स्वय सयमहीन ह, वह शक्तिहीन भी होगा और शक्तिहीन आदमी आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता और न उसकी कल्पना ही कर सकता ह।'

आज ससार मे सर्वत्र भय, निराशा और आतक का साम्राज्य छाया हुआ है, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से सशकित हो रहा है, मानव मानव से त्रस्त हो रहा है, उसका कारण असयम ही तो है। अगर आज सभी राष्ट्रो मे सयम की मधुर पयस्विनी कलकल निनाद करती हुई प्रवाहित हो चले तो राष्ट्रो का कायापलट हो जाय, सभी राष्ट्र सशक्त और समृद्ध हो जाय।

भारतवर्ष के धर्म सम्प्रदाय भी अपनी वाणी सयम नही रख रहे है, एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय पर झूठे आक्षेप, निन्दा और रागद्वेप पूर्वक वाक्प्रहार करने मे बाजी मार रहा है। यह असयम साम्प्रदायिक लोगो को शान्ति से नही जीने देता।

यही कारण है कि आज से वर्ष पहले आर्यावर्त के महा-मानव भ० महावीर ने साधको को संबोधित करते हुए कहा था—

"हत्थ सजए, पाय सजए, वाय संजये सज इदिए"

अर्थात्—हाथो को सयम मे रखो, पैरो को संयम में रखो, वाणी पर सयम रखो, इन्द्रियो पर सयम रखो।" महात्मा बुद्ध ने भी अपने शिष्यो से कहा था—

"हस्तसयता, पाद सयतो, वाचा सयतो"

"हाथो पर सयमी बनो, पैरो को सयम में रखो, वाणी को काबू मे रखो।"

जिन व्यक्तियो के कान श्रुतिमधुर स्वर्गीय सगीत की स्वर लहरी सुनने के लिए लालायित रहते हो, नेत्र सुन्दरियो के सुन्दर रूप को देखने के लिए तरसते हो, नाक सुगन्धित पदार्थो

की सौन्दर्य को ग्रहण करने के लिए छटपटाते हों जिह्वा स्वादिष्ट भोजन का आस्वादन करने के लिए लपलपाती हो और शरीर मुलायम वस्तुओं का स्पर्श करने के लिए तड़फता हो वह संयमी नहीं है वह इंद्रियों का दास है, गुलाम है ।

घोड़े का एक रईस होता है दूसरा होता है सईस । सईस घोड़े को खिलाता है पानी पिलाता है, नहलाता है, उसकी लीद उठाता है किन्तु रईस का यह काम नहीं होता । वह घोड़े का स्वामी होता है, दास नहीं । वह घोड़े पर सवारी करता है। भारत के ऋषियों ने इन्द्रियों को घोड़े की उपमा दी है। इन्द्रियाणि हयानाहुः (कठोपनिषद्)

जो आत्मा इन्द्रियों का सेवक है वह सईस है और जो इन्द्रियों का स्वामी है वह रईस है। आपसे जरा पूछूं ? आप क्या बनना चाहते हैं ? रईस बनने के लिए इन्द्रियों पर संयम करना होगा, अधिकार करना होगा वासना पर विजय प्राप्त करनी होगी । उस समय आपका नारा यह नहीं होगा —

"सैर कर दुनिया की गाफिल, जिन्दगानी फिर कहाँ ?
जिन्दगानी गर मिली तो, यह जवानी फिर कहाँ ?'

यह नारा तो सईसों का है रईसों का नहीं । रईसों का तो यह नारा है– सजमम्मिय वीरियं" संयमाचरण में शक्ति लगाना ही जीवन की सार्थकता है। संयम खलु जीवनम्' वास्तव में संयम ही जीवन है असंयम जीवन, जीवन ही नहीं, एक प्रकार की मृत्यु

ससार में ... । ... भी जीते हैं और मनुष्य
जीता है । ... ॥
है दोनों का ... में भारी अन्तर है,

लक्ष्य दोनो के जीने का है, तब तो मानव और अन्य प्राणियो मे क्या अन्तर रहा ? यदि मनुष्य की जिन्दगी का लक्ष्य खाने के लिए, कपडे पहिनने और मौज शौक करने के लिए, ऐशो आराम और सुख सुविधाओं के लिए, धन कमाने के लिए हुआ, तो पाशविक जीवन और मानवीय जीवन के जीने में क्या अन्तर रहा ? अत जिस मानव के अन्तर्हृदय मे जीवन का लक्ष्य खाना पीना, पहिनना नही, किन्तु स्वय सयम पूर्वक जीना और दूसरो को आनन्द से जीने देना होता है, वह खाता है, पीता है, पहिनता है, यथायोग्य वस्तुओ को भी अपनाता है, किन्तु केवल जिन्दगी टिकाने के लिए। इसलिए उन वस्तुओ मे जितना भी सयम हो सकता है, वह करता है।

जिस मनुष्य का अपने आप पर सयम होता है, वह चाहे कही भी चला जाय, दुखी नही होता, भारभूत नही होता, दूसरो को अखरने वाला नही होता। उसकी जिन्दगी हलकी और खुशबूदार होती है। वास्तव मे सयम ही मानवता की कसौटी है। जिसमे जितना अधिक सयम होता है, उसमे उतनी ही अधिक मानवता होती है।

कई मनुष्य बाह्य वस्तुओ पर तो फिर भी सयम कर लेते है, वे खाना कम खा लेंगे, या चाहे जैसा रूखासूखा भी खा लेगे, कपडे सीधे सादे और कम से कम पहिन लेंगे, अन्य वस्तुओ मे भी अत्यन्त मितव्ययता से काम चला लेंगे, लेकिन अपनी आन्तरिक वृत्तियो पर, अपने आवेशो, आवेगो और कषायो पर काबू नहीं पा सकेंगे, सयम नही रख सकेंगे। इसीलिए भगवान् महावीर जैसे सर्वोच्च साधको ने अपने अनुभवो का निचोड़ जगत के सामने रखा कि रणक्षेत्र मे युद्ध करने वाला योद्धा सैकडो और लाखो को पराजित कर सकता है,

प्रसिद्ध योद्धा क रूप म जगत् के तख्ने पर चमक सकता है, किन्तु अपने मन और इद्रियो पर काबू पाना, उन्हे जीतना बडा ही कठिन है । इन्हे जीतने वाला सयमी ही वास्तविक योद्धा है, विजयी शूरवीर है । एक विचारक ने कहा है कि पाच इन्द्रियाँ और चार कषायो पर जो विजय प्राप्त करता है वही मानव ह ।

आज विश्व क अधिकाश लोगो की दृष्टि बहिर्मुखी बनी हुई ह । वे रात दिन अमुक पदार्थों के उपभोग परिभोग का ही चिन्तन किया करते हैं अमुक पदार्थों के सयोग-वियोग के साथ भी उनके मन का हिंडोला डोलता रहता ह । इस प्रकार वे लोग स्वय दुखी होते हैं और अपने कुटुम्ब, समाज, जाति और देश को दुख के प्रवाह मे बहा जाते हैं। उनकी बहिर्मुखी दृष्टि के कारण व प्रत्यक्ष व्यवहार मे रीति-रिवाज मे सामाजिक प्रथाओ मे उसी बहिर्जगत का दृष्टिगत रखते हुए सोचते है खर्च करते हैं, उपभोग करते हैं । उनकी दृष्टि अन्तर्मुखी बने बिना उनम वास्तविक सयम आ नही सकता । जिसकी दृष्टि अन्तर्मुखी बन जाती ह वह बाह्य जनसमुदाय, जाति या अमुक समाज की दृष्टि स न सोच कर आत्महित की दृष्टि से सोचता ह और व्यवहार करता ह । वास्तव मे चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से दृष्टि बहिर्मुखी रहती है और उसी से रागद्वेष रूप कषाय भाव का प्रादुर्भाव होता रहता ह और यही असयम ह । असयम क होने पर आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप म रमण नहीं करता । वह पुद्गलानन्दी बन कर वासनाओ म रमण करने मे ही श्रेय समझता ह ।

भारतवर्ष मे सभी धर्मों के अपने-अपने शास्त्रो म यह बात खूब अच्छी तरह बतला दी ह कि पाचो इन्द्रियाँ अपने-

आप मे खराब नहीं है और न मन अपने आप में बुरा है। इनका दुरुपयोग बुरा है और सदुपयोग अच्छा है। अगर कुशल प्रयोक्ता इन्हीं इन्द्रियों और मन को शुद्ध परिणति की ओर मोडता है, विषयो मे प्रवृत्त होने पर भी इन्हें आसक्ति से, राग द्वेष से युक्त नहीं होने देता है, तो वह सयमी है, स्थितप्रज्ञ है। भगवद्गीता मे इसी बात का रहस्य खोलते हुए श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है—

"इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्, तौह्य–स्य परिपथिनौ।'

प्रत्येक इन्द्रिय के साथ राग और द्वेष का कांटा लगा हुआ है कुशल साधक उन राग द्वेष के वशीभूत न हो, क्योंकि इन्द्रियां शत्रु नही है, राग द्वेष ही शत्रु है।

यही बात भगवान् महावीर ने पावापुरी के अन्तिम प्रवचनों मे— उत्तराध्ययन सूत्र के ३४ वें अध्ययन के रूप मे कही है कि राग और द्वेष ये दोनों ही शत्रु है, इन्हे प्रत्येक इन्द्रिय विषयों मे से हटा ले तो मनुष्य इस ससार मे कमल पत्र की तरह निर्लेप होकर विचरण कर सकता है।

साथ ही कच्चे साधक को निशक होकर इन्द्रिय विषयों मे प्रवृत्ति करने की मनाई भी शास्त्रकारो ने की है। उन्होंने कछुए के रूपक द्वारा साधकों को सावधान किया है। भ० महावीर ने सूत्रकृताङ्ग सूत्र मे साधकों को यही सदेश दिया है—

जहा कुम्मे स अगाई, सए देहे समाहरे।
एव पावाइ मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे।

अर्थात्-जैसे कछुआ भय उपस्थित होने पर अपने अङ्गोपाङ्गों को सिकोड़ लेता है वैसे ही साधक भी विषयाभिमुख इन्द्रियों को आत्मज्ञान से सिकोड़ ले।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है—

'यदा संहरते चायं, कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य, स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।'

अर्थात्—जैसे कछुआ अपने अङ्गों को (बाह्य भय उपस्थित होने पर) समेट लेता है वैसे ही जो मनुष्य इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को हटा लेता है उसकी प्रज्ञा स्थिर है।

आपने शंकर के मन्दिर के बाहर कछुए की मूर्ति देखी है न ! वह कछुए की मूर्ति इस बात की प्रतीक है कि यदि तुम शंकर के दर्शन करना चाहते हो तो पहले कछुए के समान अपनी इन्द्रियों को अपने अधिकार में करना सीखो। जब तक कूर्म धर्म को धारण न करोगे तब तक शंकर के दर्शन (सुख के दर्शन) नहीं कर सकोगे।

इस प्रकार संयम जीवन के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य वस्तु है। बिना संयम के आने वाले पापकर्मों का प्रवाह (आस्रव) रुक नहीं सकता। छत चू रही हो उसमें पानी आ रहा हो तो उसे तोड़ कर आप नई छत नहीं बनाते अपितु पुरानी छत की मरम्मत करवा देते हैं। जिससे पानी टपकना हुआ बन्द हो जाता है। आत्मा रूपी छत है इन्द्रिय विषय रूप छिद्रों के द्वारा उसमें परभाव का पानी आ रहा है उसे संयम रूप लेप के द्वारा रोकिए। आस्रव को रोके बिना संवर

और सकामनिर्जरा नहीं हो सकती । भगवान् महावीर से उनके अन्यतम शिष्य गौतम गणधर ने प्रश्न किया—"सजमेणं भंते। जीवे किं जणयइ ?" (भगवन् ! सयम से प्राणी को क्या प्राप्ति होती है ?) भगवान् महावीर ने कहा—

"अणण्हयत्तं जणयइ"

दीर्घ और स्वस्थ जीवन के लिए सयम रसायन के समान है। वह शुद्ध रस है, जो आत्मा, मन और शरीर को स्वस्थ और मस्त बनाता है। सयम एक मेथी के लड्डू के समान है, जिसमे कडुआपन तो है, लेकिन वह कर्म रूपी वात को शमन कर आत्मशक्ति की अभिवृद्धि करता है। एतदर्थ कवि कह रहा है—"सयम विनु घडिय न इक्कु जाऊ" सयम के विना एक घडी भी नहीं जानी चाहिए।

भारत वर्ष की सस्कृति ने धन की, ऐश्वर्य की, राजा महाराजाओ की पूजा नही की है, यहाँ वही पूजनीय, अर्चनीय रहा है, जिसके जीवन मे सयम की, सदाचार की ज्योति जगमगाई रही हो, फिर वह चाहे जिस जाति, कुल, देश या वेष का व्यक्ति रहा हो।

राजपूताने के इतिहास की एक चमकती हुई घटना है। मुगलिया सल्तनत के शासक औरगजेब ने भारत के प्राय सभी सीमाप्रान्तो पर अपना साम्राज्य कायम कर लिया था किन्तु राजपूताना के वीर राजपूत चुप नहीं बैठे थे, वे बादशाह से लोहा ले रहे थे तो बादशाह भी उन वीरो से लड रहा था। बादशाह औरगजेब की बेगम गुलेनार बड़ी स्वतत्र प्रकृति की औरत थी। बडे घरानो के लोगो की इच्छाएँ भी बडी होती है, वे दिन दूनी और रात चौगुनी बढती रहती है, किन्तु

मिटती नही। पसा और वासना मनुष्य के जीवन को बरबाद कर देते हैं। भारत में सोन की दो नगरियाँ प्रसिद्ध है एक थी लका और दूसरी थी द्वारिका। मगर दोना का नतीजा क्या निकला वह हमारे सामने है। दोना का विनाश वासना से होता है, असयम से होता है। लका और द्वारिका जो एक दिन वभव की दृष्टि से चकाचौंध पैदा करने वाली थी वे ही एक दिन वासना के कारण गहरे अधकार मे डूब गइ। असयम के कारण दोना का घोर पतन हो गया।

हाँ तो गुलेनार ने युद्ध के मदान मे राजस्थान के वीर दुर्गादास की वीरता देखी तो वह उस पर मुग्ध हो गई। सोचा—' इसे कसे प्राप्त किया जाय ? ' उसने मन ही मन युक्ति सोचकर बादशाह से कहा—" दुर्गादास बडा खूखार ह, जालिम है, इसे जिन्दे ही पकडकर क्यो नहीं कैद कर लिया जाय ! बादशाह को बेगम की बात जच गई। दुर्गादास पकडा गया। उसके हाथों और पैरो मे लोहे की जजीरे पड गई। आज वह नरवीर लोहे के सीखचो मे बन्द था, किन्तु उसका हृदय आजादी के लिए तडफ रहा था। वह सोच रहा था कि किस प्रकार भारत को स्वतत्र बनाऊ। आज आपके जीवन मे जोश नहीं है खून मे गर्मी नही ह। कवि की भाषा में कहू तो —

"वह खून कहो किस मतलब का, जिसमे उबाल का नाम नहीं।
वह खून कहो किस मतलब का, आ सके देश के काम नही॥
वह खून कहो किस मतलब का, जिसमे जीवन की न रवानी'
जो परवश होकर बहता है, वह खून नही पानी"

युवको, उठो! तुम्हारे उठने से समाज उठेगा। आज दुर्गादास रात मे देश की आजादी का सूत्र तैयार कर रहा था। रात के बारह बज चुके थे, अन्धेरा छाया हुआ था, चारो ओर सन्नाटा था, वातावरण मे निस्तब्धता थी, निद्रादेवी की गोद मे सभी विश्राम कर रहे थे। उसी समय द्वार खुलने की आवाज आई। दुर्गादास देखता है, एक नौजवान फूलसा सुकोमल युवक नपे-तुले कदमो से आगे बढ रहा है। उसके एक हाथ मे दीपक था, दूसरे हाथ मे तलवार और उसके पीछे सोलह शृगार सजी हुई एक नारी थी। "अरे, यह कौन? गुलेनार!" सोचा—"यह यहाँ क्यो आई, इस अर्द्ध रात्रि मे यहाँ नारी का क्या काम?" सोच ही रहा था कि बेगम अकड कर सामने खडी हो गई। बोली— "दुर्गादास जानते हो मैं कौन हूं?" "हाँ, हाँ, क्यो नहीं जानता। तुम मुगलिया सल्तनत के बादशाह की बेगम हो, महारानी हो। तुम्हारे इशारे पर बादशाह नाचता है।" "अच्छा, दुर्गादास तब तो तुम मुझे जानते हो, किन्तु दुर्गादास, तुमसे मेरा एक प्रस्ताव है। आज मै एक आशा लेकर यहाँ आई हूँ, एक बडी भावना मे आई हूँ। आशा है, तुम मेरे प्रस्ताव को ठुकराओगे नही। तुम्हे मेरा प्रस्ताव स्वीकार करना होगा। यदि उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तो मालामाल हो जाओगे, भारत का सरताज तुम्हारे सिर पर होगा। अन्यथा यह तलवार तुम्हारे सिर पर होगी।"

मानव मौत से डरता है, घबराता है, भयभीत होता है। किन्तु जो साहसी होते है, वे मृत्यु की आंधियो से कभी नही डिगते, वे हिमालय की तरह अटल रहते है। दुर्गादास मृत्यु की भयकर विभीषिका से जरा भी नही घबराया। उसने

आवाज दी— बगम साहिबा, यह दुगादास तुम्हारा प्रस्ताव सुन लेने के बाद ही कुछ जवाब दे सकेगा।' बेगम ने हमी के फव्वारे छोड़ते हुए कहा— 'और कुछ बात नहीं ह दुर्गादास ! म तुम्हारी खूबसूरती और बहादुरी पर प्रसन्न हूँ। मरा एक छोटा सा प्रस्ताव यह है कि तुम मुझे अपनी पत्नी के रूप मे स्वीकार कर लो, मैं तुम्ह अपना पति मान लेती हू। बादशाह की तो तुम चिन्ता ही न करो। उसे तो आज ही मौत के घाट उतार दिया जायगा। यह तो मेरे बाए हाथ का खेल है।' दुर्गादास क्षण भर के लिए असमजस म पड गया। सोचा—"नीति क्या कहती है ? मेरा धम क्या कहता है ? क्या मैं मत्यु के डर से गुलेनार का प्रस्ताव स्वीकार कर लूँ ? अन्तर की आवाज आई—'नहा कभी नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। जो इन्सान धम को छोड देता है, उसे धम भी छोड दता है।

'जो दृढ राखे धम को, तिहि राखे करतार
जो डुबाये धम को, वह डूबे काली धार ॥'

बेगम तो मरी माता क समान है। नीति शास्त्र म कहा है

'राजपत्नी, गुरुपत्नी, मित्रपत्नी तथव च
पत्नीमाता, स्वमाता च, पञ्चैते मातर स्मता।

ये पाँच माताएँ बताई है। उनमे राजरानी भी माता है। दुगादास की जजीरें झन झना उठीं। उसने गभीर गजना करते हुए कहा— क्या कहती हो, गुलेनार ! भारत का यह लाल पराई स्त्री को दुर्गा क समान माता रूप म आराध्य दवी के रूप म समझता है, वह पूजा क लिए होती हैं, अचना के लिए होती है। तुम्हारा यह प्रस्ताव मुझे स्वीकार नहीं है।'

"अच्छा, क्या कहा ? मेरा प्रस्ताव तुम्हे स्वीकार नहीं है ? अभी देखती हूँ ! कामवक्स, इधर आओ। क्या हुगर मुगर देख रहे हो, इस काफिर का तुरन्त सिर उडा दो। इसने मेरे प्रस्ताव के ठोकर मारी है। देखें, अब इसका कौन रक्षक होता है ?"

"तलवार खिच जाती है, वार की तैयारी होती है, इतने में एक आवाज आई,—"ठहरो, कामवक्स, ठहरो, खबरदार है जो तलवार आगे बढा दी !" अरे ! यह कौन ? सिपह सालार, जो बादशाह का नौकर था, उसने तलवार हाथ से छीन कर दूर फैक दी। तलवार के दो टुकडे हो गए। उसने कहा—'दुर्गादास ! तुम फरिश्ते हो, तुम देवता हो, तुममे सच्ची इन्सानियत है, मानवता है, सयम की ज्योति है।" बेगम चौंकी। बोली-"सिपहसालार, तुम यहाँ कैसे ?" सिपहसालार ने कहा-"पैगम्बर को सिर झुकाने के लिए। गुलेनार बोली-"इतनी गुस्ताखी ? इतनी बदतमीजी, जरा, जबान सभाल कर बोलो, किससे बात कर रहे हो, कुछ होश भी है ?" सिपहसालार- "हाँ, एक व्यभिचारिणी औरत से। क्या कह रही हो, तुम्हे शर्म नहीं आती ?" उसने जजीरें तोड दी और कहा-"चले जाओ, भारत के देवता ! इन्द्रियो के स्वामी ! यहाँ से।"

भोग के प्रति दुर्गादास का विकर्षण देख कर एक कवि की स्वरतंत्री झनझना उठी.—

"जननी सुत ऐसो जने, जैसो दुर्गादास।
बाधी मुण्डासा राखियो, बिन खम्भे आकाश।"

सयम जीवन को महान बनाता है। जीवन की परिभाषा करते हुए आचार्य ने कहा—"उस व्यक्ति का सच्चा जीवन है, जो विकारो से युद्ध करता है, शेर की तरह गरजता हुआ.

भयाय भत्याचार और भ्रष्टाचार स सघर्ष करता है । गजराज की तरह भूमता हुआ, पापाचार का परास्त करता है ।' जिन्दगी जीने का अर्थ है—वासनाओं से जूझना । एक क्षण भी जीओ किन्तु जाज्वल्यमान दीपक की तरह प्रकाश करते हुए जीओ। अधजले कण्डे की तरह विकारों का वासनाओं का धुआ छोडते हुए सौ वर्ष तक भी जिन्दे रहे तो उसका कुछ भी मूल्य नही है । रथनेमि की अभ्यर्थना पर, वासनामय जीवन के आमन्त्रण पर, सयम की स्रोतस्विनी मे स्नान करने वाली पवित्र महासती राजीमती न गजते हुए कहा था–

' सेय ते मरण भवे "

'असयमी जीवन का आलिगन करने की अपेक्षा मृत्यु का आलिगन तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है।' असयमी जीवन जीना मृत्यु जसा है सुवास रहित पुष्प जसा है तलरहित तिल जसा है प्राण रहित शरीर जसा है, पतवारविहीन नौका जसा है जो चारों ओर स टकराता रहता है ।

सयम जीवन का आतरिक सौदर्य है। जिसके बिना बाह्य और कृत्रिम सौदर्य निरर्थक है। कागज के फूलों की तरह भले ही शृगार प्रसाधन मे रगबिरगे बन जाय किन्तु वास्तविक सौदर्य के सन्दर्शन नहीं हो सकते । आज का इसान आन्तरिक सौन्दर्य का विस्मृत होकर बाह्य सौदर्य के पीछे दीवाना बना हुआ है जो 'अजब तरी कुदरत अजब तरा खेल, छछूदरी के सिर मे, चमेली का तल।' वाली उक्ति को चरितार्थ करता जा रहा है। महाकवि रवीन्द्र न अपन सौदर्य बोध नामक अनुभव पूर्ण निबन्ध मे लिखा है कि सौन्दर्य का पूर्ण मात्रा म भोग करन के लिए सयम की आवश्यकता है ।' जो सौदर्य का उपासक है

वह सयम और नियम से जरूर आवद्ध होता है, उसके जीवन के कण-कण मे सयम की ज्योति जगमगाती रहती है। यदि आप वस्तुत सौन्दर्य का उपभोग करना चाहते है तो भोग लालसा का दमन कीजिए, सयम और नियम से जीवन को ओत-प्रोत कीजिए। भारतीय सस्कृति का आकर्षण इसी ओर रहा है। वह हमे सत्य, और सुन्दर द्वारा हमे शिवत्व की ओर प्रेरित करती है, चिरस्थायी जगत् की ओर आकृष्ट करती है, जहाँ पर मानव अन्तर्द्वन्द्व भूल जाता है, शान्ति के अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करने लगता है।

हा, तो ! सयम के माधुर्य का रसास्वादन करता हो तो आप भी आज से ही तैयार हो जाइए, यह चीज केवल व्याख्यान श्रवण मात्र से नही मिलेगी, इसे तो जीवन मे आचरण करने से ही प्राप्त की जा सकती है। जितना-जितना आप सयम का आचरण जीवन मे करेंगे, उतना-उतना माधुर्य आपको प्रत्यक्ष मिलता जायेगा। 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' के अनुसार यह तो प्रत्यक्ष अजमाने की वस्तु है। फिर तो अपने आप ही आपकी जिह्वा बोल उठेगी।

• दस

राम राज्य

आज का वह दिन्य प्रभात है जिस दिन भारत एक हजार वर्ष की गुलामी को भोगकर सव-तन्त्र स्वतन्त्र हुआ था। जिसके लिए भारत के नौनिहालो ने हँसते हँसते अपनी छाती पर सगीनो के वार सहे थे। माताओ ने अपने प्यारे लाला को फाँसी के झूले मे झूलते हुए देखा था। आततायी के द्वारा जलियाँवाला बाग म दानवता का जो नग्न रूप प्रदर्शित किया गया था, जिसे देखकर इन्सानियत आठ आठ आँसू रोई थी, और जब गाधी की विचारा रूपी आधी ने विदेशी शासन समाप्त कर दिया तो सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक लाल किले पर यूनियन जैक के स्थान पर समता और शान्ति का प्रतीक अशोक चक्राङ्कित तिरगा लहराया तो भारतीयो का हृदय बासो उछलन लगा। मन मयूर नाच उठा, हृदय कमल खिल उठा। जीवन के कण कण म नव चेतना, नव जागृति अठखेलिया करने लगी, जय जयकार के गगन भेदी नारो म आकाश मण्डल गुञ्ज उठा। आबाल वृद्ध सभी प्रसन्न थ सभी का मुख मण्डल खिलखिलाकर हस रहा था, और कवि की स्वर लहरी भी झनझना रही थी—

विकास की आस भरा नवेन्दु सा,
हरा - भरा कोमल पुष्प माल सा।
प्रमोद दाता विमल प्रभात सा,
स्वतन्त्रता का शुचि पर्व आ लसा ॥

आज वही पन्द्रह अगस्त है, किन्तु क्या वह प्रसन्नता है जो आजादी को प्राप्त करते समय हुई थी। क्या वह उत्सुकता है ? जो स्वतन्त्रता प्राप्त करते समय हुई थी, क्या वह जोश है ? जो गुलामी से मुक्त होते समय हुआ था, जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ वहाँ तक अधिकार की भाषा मे कह सकता हूँ कि वह प्रसन्नता, वह जोश, और उमग नहीं है।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पूर्व हम जो रगीन कल्पनाओ की ऊँची उडान भर रहे थे, वे कमनीय कल्पनाए साकार रूप धारण नही कर सकीं। भारत के आजाद होने के पश्चात् महात्माजी ने तथा देश के अन्य गणमान्य नेताओ ने समय समय पर इस बात पर बल दिया कि स्वराज्य को सुराज्य बनाना है, रामराज्य बनाना है।

राम भारतीय सस्कृति के महान् प्रतीक है, जिस पर समूची आर्य सस्कृति को गर्व है, वह एक जाज्वल्यमान प्रकाश स्तभ है जिसकी प्रकाश किरणें जैन, बौद्ध और वैदिक सस्कृति व साहित्य को प्रकाशित कर रही है। भूले भटके जीवन राहियो को मार्ग दर्शन कर रही है। भारत के कोटि - कोटि नर-नारी निष्ठा के साथ राम का स्मरण करते है। ग्यारह लाख वर्ष का दीर्घ काल व्यतीत हो जाने पर भी जिसके जीवन की चमक - दमक किसी प्रकार कम नही हुई है।

आप जानते है इस दीर्घकाल म अनेक राज क्रान्तियाँ हुई है, अनेक सम्राट चमचमाती हुई तलवारो को लेकर आये है जिन्होने अपनी वीरता से सत्ता स अन्याय और अत्याचार स जन जन क मन मन मे भय का सचार कर दिया, वे जिधर स भी गुजरे उधर एक तूफान मचा दिया जिनक नाम मात्र स बडे बडे वीरो क कलजे काप जात थ, हृदय धडकने लगत थ, जिन्होने सम्प्रदायवाद के रग मे रगकर अधश्रद्धा मे अध होकर जो अत्याचार किये, खून की नदियाँ बहाइ, सास्कृतिक स्थानो को नष्ट भ्रष्ट किय, अबलाओ क साथ बलात्कार किये, उन सम्राटो न मानव क तन पर भल ही शासन किया हो, किन्तु व मानवो के मन पर शासन न कर सके, उनकी वीरताओ की गाथाए, कागज क चीथडो पर भल ही अकित हो, किन्तु जनता जनार्दन क हृदय पर अङ्कित नही है उनका नाम भल ही इतिहास के पृष्ठो पर चमक रहा हो, किन्तु मानव के मन मे नहीं चमक रहा है व राम की तरह जनता के हृदय हार नही बन सके है। भारतीय जन चेतना उन्ह स्मरण नहीं करती है, राम की तरह उनकी पूजा और अर्चना नहीं करती है।

हाँ तो मैं आप स कह रहा था कि भारतीय जन मन पर राम क जीवन की गहरी छाप है। काश्मीर से कन्या कुमारी तक और अटक से कटक तक, आप चाहे जहाँ चले जाइये सर्वत्र राम क सतेज जीवन से जनता प्रभावित मिलगी राम क सौरभ मय जीवन पर जितनी, कवियो की कलमे दौडी है, लखको की लेखनियाँ चली हैं, उतनी शायद ही किसी अन्य महापुरुष क जीवन पर चली हो। रघुवश भट्टिकाव्य महावीर-चरित्र उत्तर-रामचरित प्रतिमा नाटक, जानकी-हरण, कुन्दमाला अनघराघव, बालरामायण हनुमन्नाटक अध्यात्म-रामायण, अद्भुत-

रामायण, आनन्द–रामायण, वाल्मीकि–रामायण, आदि अनेक काव्य राम के जीवन प्रसगो को लेकर गीर्वाण गिरा के यशस्वी कवियो ने लिखे है। सस्कृत साहित्य मे ही नही भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं के कवियो ने भी राम के पवित्र–चरित्र पर लिखने में ही अपनी लेखनी का गौरव अनुभव किया है। "कम्बन–कृत तमिल रामायण, तेलुगू द्विपायन रामायण, मलयालम रामचरितम्, कन्नडी तोरावे रामायण, बँगला कृतिवासी रामायण, उड़िया बलदास रामायण, मराठी भावार्थ रामायण, हिन्दी रामचरितमानस, देशराज जीकृत जैन रामायण, आदि राम काव्य इस बात के प्रबल प्रमाण हैं कि राम के उज्ज्वल चरित्र ने सभी प्रभावित रहे हैं। भारत मे ही नही किन्तु तिब्बत, सिहल, खोतान, हिन्दचीन, श्याम, ब्रह्मदेश और हिन्देशिया आदि प्रान्तो मे भी राम की यशोगाथा एक स्वर से गाई गई है। जैन सस्कृति मे राम आठवाँ बलदेव के रूप मे प्रतिष्ठित है तो बौद्ध साहित्य मे बोधिसत्त्व के रूप मे विख्यात हैं, और वैदिक धर्म में विष्णु के अवतार के रूप मे प्रसिद्ध है इस प्रकार भारत की तीनो प्रमुख सस्कृतियो मे राम कथा का विराट् समन्वय है।

राम के चरित्र को इतना महत्त्व क्यो मिला, राम के सर्वत्र गीत क्यो गाये गये, राम इतने अधिक पूजनीय और वन्दनीय क्यो बने, इसका एक मात्र कारण है राम का सौरभ मय जीवन ही। राम के मधुर जीवन को गन्ने की उपमा दी जा सकती है, गन्ने मे सर्वत्र मिठास ही मिठास है, जहाँ भी देखते है वहाँ रस का मधुर झरणा झरता हुआ दिखलाई देता है, वैसे ही राम के जीवन मे भी सर्वत्र मधुरता के सन्दर्शन होते है। गुलाबी बचपन से लेकर सुनहरी सन्ध्या तक वही मधुर और

जीवन सत्य सदाचार और कर्त्तव्य पालन का ज्वलंत उदाहरण है। जो आप पुत्र का सफल प्रतिनिधित्व करता है।

राम को अयोध्या का स्वर्ण-सिंहासन मिलने वाला है। अयोध्या का विराट वैभव उनके चरण-कमलों को चूमने के लिए लालायित हो रहा है। जनता के मन में हर्ष की तरंगें उठ रही हैं, कि राम हमारे राजा होंगे। किन्तु उस समय राम का मन प्रसन्न नहीं है उनके हृदय में एक तूफान चल रहा है। वे एकान्त-शान्त स्थान में बैठकर सोच रहे हैं कि जिस स्वर्ण-सिंहासन को प्राप्त करने के लिए भाई ने भाई का गला काटा है, जिस सिंहासन को प्राप्त करने के लिए हजारों माता पिता बेमौत मौत के घाट उतार दिये गये हैं, जिस सिंहासन को प्राप्त करने के लिए लाखों व्यक्तियों ने मृत्यु रूपी महारानी को वरण की है, वह सिंहासन मुझे मिल रहा है किन्तु उस सिंहासन का वस्तुतः अधिकारी मैं नहीं मेरे छोटे भाई हैं।

कल्पना कीजिये - आप बाजार से मिठाई लाये हैं, वह मिठाई पहले आप स्वयं खायेंगे या बच्चों को देंगे। आप पहले स्वयं मिठाई न खाकर बच्चों को देते हैं यही बात राज्य सिंहासन के सम्बन्ध में राम सोच रहे थे, कि यह सिंहासन मेरे लघु भ्राताओं को देना चाहिए था, मेरे को क्यों दिया जा रहा है। राम के मन में अधिकार प्राप्त करने की लिप्सा नहीं है, इच्छा नहीं है वे अपना अधिकार छोटों को देना चाहते हैं। बड़ों का बड़प्पन इसी में है कि वे अपने अधिकार छोटे को दें और छोटों का कर्तव्य है कि वे बड़ों की अनुनय विनय करें उनकी आज्ञा का पालन करें। रामराज्य की मधुर कल्पना करने वाले आज के राम अधिकार को स्वयं

प्राप्त करना चाहते हैं, या छोटों को देना चाहते हैं। जिस समय चुनाव में वोटों को लेने का सवाल आता है उस समय आज के राम घर-घर और दर-दर फिर कर वोटों की याचना करते हैं किन्तु अधिकार की कुर्सी पर आसीन होने के पश्चात् वे कितने घरों में फिरते हैं, कितने दीन-दुखियों का दुःख दूर करते हैं, कितने वचनों का पालन करते हैं यह आज के अधिकारी रामों को सोचने का है। अन्तर्निरीक्षण करने का है।

हाँ, तो आप राम के जीवन को और आगे से देखिए, परिस्थितियाँ बदलती है, राम को राज्य सिंहासन के स्थान पर वनवास मिलता है, उस समय भयानक जगलों के महामार्ग पर बढ़ते समय भी उनके चेहरे पर खिन्नता नहीं है। दुःख नहीं है, वे पूर्ववत् ही आनन्द की मस्ती में झूम रहे हैं, अयोध्या की जनता के सामने अन्धकार था किन्तु राम के सामने वही प्रकाश चमक रहा था। अयोध्या की जनता का मुख मुर्झा गया था किन्तु राम के मुँह पर वही मधुर मुस्कान अठखेलियां कर रही थीं। आज पन्द्रह अगस्त के मगलमय प्रसग पर भारत के रामों को सोचना है कि हम रामराज्य तो चाहते हैं किन्तु क्या राम की तरह सुख दुःख के प्रति हमारे में समभाव है ? एलेक्शन में हार जाने पर हमारा मुँह मुर्झा तो नहीं जाता है ? आपेसे बाहर होकर विरोधियों के प्रति हम अपशब्द या गाली गलौज तो नहीं निकालते है ?

राम के जीवन का एक और दूसरा जीवन प्रसग लीजिये। युद्ध के मैदान में रावण के शक्तिबाण से लक्ष्मण घायल हो चुके हैं, मूर्च्छित हो चुके हैं, जिससे राम की सेना में सर्वत्र

सन्नाटा छा गया है । वाल्मीकी रामायण के अनुसार हनुमान सजीवनी बूंटी लेने के लिए गये हुए हैं अथवा जन दृष्टि से विशल्या लेने गये हैं, उस समय जिस तरह ग्रह के चारों ओर उपग्रह मण्डराते रहते हैं उस तरह लक्ष्मण के चारों ओर सामंत मण्डराये हुए हैं, राम सुग्रीव विभिषण आदि सभी उपाय सोच रहे हैं लक्ष्मण की मूर्च्छा को दूर करने का किन्तु उस समय सामंतों ने क्या देखा—प्राची दिशा से उषा सुन्दरी सुनहरे तीर बरसाती हुई जीवन को बींधने के लिए द्रुत-गति से बढ़ रही है । जिसे देखकर सभी अवाक रह गये, चकित रह गये उन्हें समझ में ही नहीं आया कि यह रावण की माया है या वस्तुतः उषा सुंदरी ही है । राम कथा के लेखक बतलाते हैं कि उस समय उषा की सुनहरी किरणों को देखते ही राम का चेहरा भी मुर्झा गया, जिसे देखकर सामन्तों ने राम से प्रश्न किया कि महाराज ! क्या आपको माता की चिन्ता सता रही है ? या पिता की मृत्यु का फिक्र लगा हुआ है ? या प्यारे भ्राता लक्ष्मण की इस अवस्था को देखकर चिंतित हैं ? अथवा सती-सीता की स्मृति से आपकी यह अवस्था हुई है ? प्रश्न के उत्तर में राम ने जो कहा वह इतना महत्त्व-पूर्ण है कि उसमें भारतीय संस्कृति की साक्षात् आत्मा गूंज रही है । उन्होंने कहा—सामंतो ! मुझे न माता की चिंता है और न पिता का फिक्र ही है, न लक्ष्मण के मृत्यु का शोक है और न सीता की याद ही आ रही है किन्तु एक बात है जो मेरे कोमल हृदय को बींध रही है जिसके कारण मेरी आंखों से आंसू आये हैं वह यह है कि जब विभीषण मेरे पास में आये थे तब मैंने उन्हें लंकेश कहकर सम्बोधित किया था । यदि इस समय सूर्योदय होगया तो लक्ष्मण मर

जायेगा, सूर्योदय होते ही उसके शरीर के कण-कण में जहर फैल जायेगा, और भाई लक्ष्मण की बिना सहायता के मैं लंका किस प्रकार जीत सकूंगा? यही चिन्ता मुझे व्यथित कर रही है।

"तारण भूमि मे राम कहे,
मुझ सोच विभीषण भूप कहे को"

राम के जीवन का यह लघु प्रसंग राम राज्य चाहने वालों को चिन्तन करने के लिए बाध्य करता है कि राम वचन का कितना खयाल रखते थे, क्या हम भी राम की तरह वचन का ध्यान रखते हैं या नहीं। वोटों को लेने के पूर्व हमने स्नेही साथियों से वादे किये थे, प्रण किये थे, उनके सामने प्रतिज्ञाएं ग्रहण की थीं, क्या वे प्रतिज्ञाएं पूर्ण की हैं या नहीं? आजका यह पन्द्रह अगस्त हमें यह विचारने के लिए उत्प्रेरित कर रहा है।

हमारे यहाँ प्राचीन काल से एक युक्ति प्रसिद्ध है कि— "यथा राजा तथा प्रजा" जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है, यदि राजा धर्म निष्ठ है तो प्रजा भी धर्म निष्ठ होगी। राम-राज्य की प्रजा का वर्णन वाल्मीकि और सन्त तुलसीदास ने विशद रूप से किया है, जहा पर प्रजा मे अहिंसा की निर्मल भावना लहलहा रही है। दीन दुखियों के प्रति करुणा की वर्षा हो रही है। जीवन के कण-कण में से सत्य की प्रकाश किरणें बिखर रही है। जन जीवन मे सुख और शान्ति की वंशी बज रही है, प्रजा को राजा की शिकायत नहीं है और न राजा को प्रजा की ही शिकायत है। यह है राम राज्य की प्रजा का चित्रण,

रामराज्य पर मुग्ध होकर ही राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एकबार कहा था स्वराज्य का सर्वोत्तम रूप राम राज्य है' राम राज्य का अर्थ है भगवान् का राज्य, सद्गुणों का राज्य, सद्वृत्तियों का राज्य। जब कोई व्यक्ति कभी बुरा काम कर लेता है तो आपके मुह से सहसा यह निकल जाता है कि 'इसके हृदय में से राम निकल गये हैं।

एक दिन भारतवर्ष के मानवों के लिए कहा गया था कि यदि किसी व्यक्ति को चरित्र की शिक्षा ग्रहण करनी है तो वह भारतवासियों से ग्रहण करे, यहाँ का इन्सान जहाँ भी गया वहां अपने पवित्र-चरित्र की सौरभ फैलाता रहा। भारत के इन्सान ने विदेशों में जाकर अपने चरित्र से उन्हें प्रभावित किया है। एतदर्थ ही संस्कृत साहित्य के यशस्वी कवि की स्वरलहरी झनझना उठी है —

एतद्देश प्रसूतस्य, सकाशादग्रजन्मन
स्व स्व चरित्रं शिक्षेरन्, पृथिव्यां सर्व मानवा।

भारतीय कला कोविदों ने ही नहीं किन्तु प्रतिभा सम्पन्न पाश्चात्य विद्वानों ने भी भारत के मानवों की यशोगाथाएं गाई हैं। चीनी यात्री फाहियान 'ह्वेनसांग' इत्सिङ्, और 'मेगास्थनीज' तथा मुसलमान यात्री अलबरूनी जो भारत की यात्रा करने आये थे उन्होंने भारत की यात्रा के मधुर संस्मरण लिखे उन्हें पढ़कर भारतीय मानवों के प्रति चीन वालों में जो सद्भावना और निष्ठा पैदा हुई वह कवीन्द्र रवीन्द्र के चीन पहुँचने पर अभिव्यक्त हुई थी। चीन निवासियों ने उस भारत के देवता का जो स्वागत किया वह इतिहास में अमर है और अमर रहेगा। उन्होंने कहा— 'भारत के मानवगामी

है, जहाँ चोरियाँ नही होती हैं, बदमाशियाँ नहीं होती है, जहाँ बडे बडे नगरो मे सोने, चाँदी, हीरे, पन्ने, माणक और मोतियो की दुकानो पर भी ताले नही लगाये जाते, धन के अम्बार भी धान की तरह खुले पडे रहते है, कितनी प्रामाणिकता व सत्यनिष्ठा है आपके देशवासियो मे।' चीन वालो की बात को सुनकर कवीन्द्र रवीन्द्र की आखो मे आंसू आगये उन्होने कहा, 'भाइयो! एक दिन हमारा देश ऐसा ही था, जैसा फाहियान और ह्वेनसाग आदि ने चित्रित किया है, किन्तु आज वहा पर अप्रामाणिकता का बोलबाला है, जहां हीरे, पन्ने, माणक की चोरी नही होती थी, आज वहाँ के मानव जूतियो की चोरी करने मे सकोच नहीं करते, कितना पतन होगया है हमारे देश का।'

अभी कुछ दिन पूर्व समाचार पत्रो मे कलकत्ते की एक घटना प्रकाशित हुई थी। एक स्थानीय डाक्टर के पास मध्याह्न मे एक नौजवान महिला आई और उसने डाक्टर साहब से कहा कि मेरे पति बीमार है, क्या आप उनकी चिकित्सा कर सकते है? डाक्टर ने पूछा—बहिन, क्या बीमारी है उनको। उस बहिन ने कहा कि कुछ दिनो से वे रह रहकर "बिल पेमेण्ट करो" "बिल पेमेन्ट करो" इस प्रकार चिल्लाते रहते है। डाक्टर ने कहा बहिन ज्ञात होता है कि उनको कोई मानसिक रोग है, कुछ दिनो तक औषधी और इन्जेक्शन लेने से बिल्कुल ही ठीक होजायेगा। ५०० रुपये मे इलाज तय हुआ, बहिन ने अपना बटुआ खोला, और १०० रुपये का नोट देते हुए कहा आपकी कार खाली है, यदि आपकी इच्छा हो तो उन्हे कार मे बिठाकर यहाँ ले आऊँ। डाक्टर को रुपये देखकर विश्वास होगया था, उसने कहा आप कार को खुशी से लेजा सकती है। कार में

बैठकर बाजार मे आई जहाँ जौहरी की प्रसिद्ध दुकान थी। उसने जौहरी से माल दिखाने को कहा जौहरी कार और उसकी चमकदार वेषभूषा को देखकर प्रभावित होगया था, उसने बढ़िया से बढ़िया माल दिखाया और उस बहिन ने पचास हजार का माल पसन्द किया। बटुए को खोलकर दो हजार रुपये के नोट देते हुए कहा—यदि आप अपने मुनीम को मेरे साथ भेज दें तो मै अपने पति से इसका बिल पेमेन्ट करादूगी। जौहरी ने कहा, बहुत अच्छा और उसने अपना मुनीम उस बहिन के साथ कर दिया। माल और मुनीम को लेकर वह उसी डाक्टर के यहाँ आई कार से उतर कर वह सीधी ही डाक्टर के पास गई और कहा कि ये मेरे पति आ रहे हैं आप उन्हें अच्छी तरह देखकर इलाज चालू कीजियेगा। डाक्टर काम मे अत्यधिक व्यस्त था उसने पास के कमरे मे मुनीम को बिठा दिया। डाक्टर पूर्व आये रोगियो को रवाना कर मुनीम के पास आया। मुनीम ने डाक्टर से कहा—' बिल पेमेन्ट कीजिये डाक्टर ने मन म सोचा बहिन का कथन पूर्ण सत्य है अत उसने विनोद करते हुए कहा 'हाँ हाँ अभी बिलपेमेण्ट करता हूँ" कहकर ज्यो ही डाक्टर ने उसके शरीर का परीक्षण करना चाहा त्यो ही वह चिल्ला उठा, महाशयजी! यह क्या कर रहे हैं? डाक्टर ने कहा—आपको बिल पेमण्ट की बीमारी है, उसकी मैं जाच कर रहा हूँ। मुनीम घबरा उठा—उसने कहा यह आपको किसने कहा कि मै बीमार हूँ। आपकी धर्मपत्नी ५० हजार के जेवर दुकान से लाई हैं और आपको कहकर व मकान के अदर गई है अत शीघ्र बिलपेमण्ट कीजिये।

डाक्टर ने दो कदम पीछे रखे और साश्चर्य कहा—क्या कहा आपने? अभी जो बहिन आई थी आपके साथ वह मेरी

नही किन्तु आपकी धर्मपत्नी थी, जो श्रीमान् को यहां चिकित्सा करवाने के लिए लाई है, समझे साहब ।

मुनीम ने पुन कहा—क्या आपने भाग तो नहीं पी ली है, जो अपनी पत्नी को मेरी पत्नी बतला रहे है, मजाक न कीजिये, शीघ्र ही बिल पेमेण्ट करने का कष्ट कीजिये ।

इस विचित्र सम्वाद से उस महिला के प्रति सन्देह पैदा हो गया । इधर उधर तलाश करने पर भी उस धूर्त महिला का कही भी पता न लगा कि वह कब वहा से गायब हो गई थी । जिससे सारा रहस्य खुल गया । इस प्रकार प्रतिदिन समाचार पत्रो मे अनैतिकता के काले कारनामे देखने को मिलते है । आश्चर्य है, जो देश एक दिन नैतिकता की दृष्टि से सर्वोन्नत था आज वह कहा का कहा पहुँच गया है ।

यदि आप राम राज्य चाहते है, देश को आबाद और सुखी देखना चाहते है तो नैतिकता की महाज्योति को हृदय मे जगाइये, आज की स्वतन्त्रता की वर्षगाठ पर यह प्रतिज्ञा ग्रहण कीजिये कि हम राम की तरह आदर्श उपस्थित करेंगे, जिससे देश के गौरव को चार चाँद लगेगा ।

• ग्यारह

जीवन का अमृत

भारतीय सस्कृति अपने आप मे एक विराट सस्कृति है, जो हजारा वर्षों से गगा के विशाल प्रवाह की भाँति जन जन के मन मे प्रवाहित होती आ रही है, मन और मस्तिष्क का परिमाजन करती हुई आ रही है, मानव जाति के बिखरे हुए दिल और दिमागा को मिलाती हुई आ रही है। भारतीय सस्कृति समन्वय और सगम की सस्कृति है, मेल और मिलाप की सस्कृति है, मिलन और सम्मिलन की सस्कृति है । जो भी विचारधाराएँ आइ, उन्हें अपने आप मे मिलाते हुए निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना ही इस सस्कृति का समुद्देश रहा है । न्याय, सांख्य, वैशेषिक, वेदान्त, मीमांसक, बौद्ध और जन जितने भी दर्शन हैं, उनके आधार और विचारा मे चाहे कितनी भी विभिन्नता रही हो किन्तु उस विभिन्नता म भी अभिन्नता रही हुई है, अनेकता मे भी एकता रही हुई है भेद मे भी अभेद रहा हुआ है । यदि हम इन सस्कृतिया का, दर्शना का गहराई स अध्ययन करते हैं तो दिन के उजाले की तरह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि सभी दार्शनिकों ने साधना के क्षेत्र मे सत्य को प्रमुख स्थान दिया है, जीवन का अमृत बताया है ।

सत्य अपने आप मे इतना महान् है कि उसे ठुकरा कर ससार मे कोई भी वास्तविक रूप मे जिन्दा नहीं रह सकता। ससार के बड़े-से बड़े विचारक हो, दार्शनिक हो, कवि हो, कलाकार हो, तीर्थंकर हो, पैगम्बर हो या महात्मा हो, सभी सत्य की सेवा करके ही उन्नत पद पर पहुंचे है। सत्य के बिना सारा ससार शून्य है। दूसरे शब्दो मे कहूं तो सत्य, वह आधार शिला है, जिस पर सारा ससार टिका हुआ है। भूमण्डल का सारा व्यापार, सारा व्यवहार और सारी नीतिया, सभी यम-नियम आदि सत्य के सहारे टिके हुए है। इसीलिए महान् आचार्य ने सत्य की महिमा को अभिव्यक्त करते हुए कहा है—

"सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रवि.
सत्येन वाति वायुश्च, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।"

पौराणिको का कहना है, यह पृथ्वी शेषनाग के फण पर टिकी हुई है, कोई और कुछ ही कल्पना करता है, परन्तु तथ्य दर्शी आचार्य कहते हैं, यह सारी पृथ्वी सत्य पर टिकी हुई है। सत्य के कारण ही नभोमण्डल में चमकता हुआ सूर्य सारे ससार को ताप देता है, सन् सन् करके चलती हुई शीतल, मन्द और सुगन्धित हवाएँ सत्य के कारण ही बहती हैं। और अधिक क्या कहें, ससार की सारी वस्तुएँ सत्य पर ही प्रतिष्ठित है।

अग्नि मे से उष्णता निकाल ली जाय, पानी मे से शीतलता निकाल लीजाय, मिट्टी मे से आधार देने का गुण हटा लिया जाय, सूर्य में से प्रकाश को अलग कर दिया जाय तो कोई इन्हे अग्नि, पानी, पृथ्वी या सूर्य नहीं कहेगा। क्यो ? क्योंकि इनमे से जो सत्य था, असली तत्त्व था, प्राण था, वह निकल

चुका । शरीर में से प्राण निकल जाने पर कोई उसे जिन्दा प्राणी नहीं कहेगा । इसलिए जैसे संसार की तमाम वस्तुओं में से सत्य निकल जाने पर उन्हें वस्तुत्व की दृष्टि से उन नामों से नहीं पुकारा जाता । इसी प्रकार साधना के क्षेत्र में, मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में फिर वह चाहे सामाजिक हो, आर्थिक हो धार्मिक हो राजनैतिक हो, सांस्कृतिक हो, शैक्षणिक हो या और कोई हो सत्य नहीं रहता तो उस साधना का उस जीवन का मूल्य कौड़ी भर भी नहीं है ।

सत्य वह पारसमणि है, जिसके स्पर्श होते ही मानवजीवन रूप लोहा सोना बन कर चमक उठता है । सत्य को जिसने भी ग्रहण किया, वह अगर भिखारी था, कंगाल था, तुच्छ व्यक्ति था तो भी संसार का पूजनीय, आदरणीय और संत शिरोमणि बन गया ।

परन्तु सत्य मानव की कसौटी अवश्य करता है । वह जिसे महान् बनाना चाहता है उसे पूरी तरह से ठोकपीट कर अन्त में समाज प्रतिष्ठित समाज मान्य बनाता है । हजारों वर्ष पुरानी कहानी है — अर्हन्नक सत्य का परम उपासक था । उसकी रग रग में सत्य धर्म का रंग रम गया था । वह सम्पत्ति परिवार, मान प्रतिष्ठा और प्राण तक को भी सत्य के सामने तुच्छ समझता था । आजकल के लोगों जैसा होता तो जरा से भय में या प्राणों पर आपत्ति आते ही, पैसों का लोभ मिलते ही सत्य को ताक में रख देता । परन्तु वह दृढ धर्मी और सत्याग्रह नरवीर था । वह चम्पा नगरी से जहाजों में माल लेकर अपने अनेक साथियों के साथ व्यापार के लिए विदेश जा रहा था । रास्ते में उसके सत्य की पूरी कसौटी होती है । एक देव

भयकर पिशाच का रूप बनाकर, आँखें लाल-लाल किये अर्हन्नक को डराने के लिए आता है। वह कहता है— "हे अर्हन्नक ! तुम समझ जाओ, तुमने जो कुछ पकड़ रखा है, वह सब झूठा है, ढोंग है, उसमे कोई तथ्य नही है, छोड़ दो, उस खोटे नकली सत्य को !" अर्हन्नक के मन पर देवता की बात का कोई असर नहीं हुआ। वह जरा भी अपने सत्य से विचलित नही हुआ। फिर उसने और क्रूर रूप बनाकर जहाज को उलटने का सा डौल दिखाया। और कहा— अरे, धर्म ढोंगी अब भी मानजा। क्यो अपने साथ ही इन निर्दोष साथियो को मरवाता है। कहदे, मैंने जो कुछ माना था, वह सब झूठा है !" अर्हन्नक के साथी लोग घबरा गए। वे कहने लगे— भाई, यह तो आपत्तिकाल है। 'आपत्काले मर्यादा नास्ति' इतना सा जबान से कहने में तुम्हारे क्या लगता है ? तुम अपने साथ हमारे प्राणो को भी सकट में क्यो डाल रहे हो ? जरा सी जबान हिला दो न !" पर वह अर्हन्नक था। वह आत्मा की अमरता का सन्देश भगवान् महावीर से सीख चुका था। 'नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि' का पाठ उसके रोम-रोम मे रम गया था। आत्मा मे से सत्य निकला कि प्राण निकलने के समान है, यह वह खूब अच्छी तरह जानता था। उसने साथियो को भी सत्य का महात्म्य बतलाया, स्वय भी सत्य पर अटल रहा। देवता उसका बाल भी बाका न कर सका। उलटे, उस सत्यधारी के चरणो का सेवक बन कर देवता हाथ जोडे खड़ा है और वर मागने का कहता है। पर उसे देवता के सहारे की जरूरत नहीं थी, सत्य के सहारे की जरूरत थी। सत्य की कसौटी हो गई। देवता प्रसन्न होकर जय जय कार करता हुआ अपने स्थान पर लौट गया।

सत्य केवल वह नहीं है जो वाणी से ही बोला जाता है। सत्य वाणी से भी बोला जाता है, प्रकट किया जाता है, मन से भी सोचा जाता है और बुद्धि से भी विश्लेषण किया जाता है तथा आत्मा से आचरण भी किया जाता है। इसीलिए सत्य का लक्षण करते हुए भारतीय मनीषियों ने काफी गंध दृष्टि से सोचा है। उन्होंने कहा—

"यद् भूत हित मत्यन्त मतत् सत्यं मन मम।"

जो प्राणिमात्र के लिए अत्यन्त हितकर हो, वही, सत्य मुझे मान्य है।'

सत्य की व्युत्पत्ति करते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य शान्ति सूरि कहते हैं—

'सद्भ्यो हित, सत्यम्'

जो प्राणियों के लिए हितकर हो, वह सत्य है। यहाँ यह सोचना पड़ेगा कि मान लो, एक चोर यह कहे कि चोरी करना मेरे लिए हितकर है या शराबी कहे कि शराब पीना मेरे लिए हित है, तो उस समय सार्वकालिक और सार्वत्रिक दृष्टि की कसौटी पर उस हित को कसना पड़ेगा। 'चोरी करना हितकर है', कहने वाला व्यक्ति उस समय यह बात कहता है जब तक वह पकड़ा नहीं जाता या उसे कोई मार नहीं पड़ती, किन्तु जब वह पकड़ा जाय या, उस मार पड़े तो वह शायद इस वाक्य को बदल देगा। अथवा जब उसने दूसरे के घर में चोरी की, पर ही उसके घर कोई दूसरा व्यक्ति चोरी करता तो वह कभी नहीं कहता कि 'चोरी करना हितकर है। इससे सिद्ध हुआ कि चोरी करना सार्वत्रिक और सार्वकालिक दृष्टि

से सत्य नहीं (हितकर नहीं) है। इसी तरह शराब पीना भी हितकर होता तो सारी दुनिया के लिए सब समय और सभी जगह हितकर होता मगर अनुभव उसके इसके विपरीत हुआ है। इसलिए शराब पीना सत्य (हित) नहीं है।

सर्वभूत हितकर वचन, आचरण, विचार या तत्त्व का नाम ही सत्य है।

दुनिया के जितने भी धर्म है, दर्शन है, वाद हैं, पथ है या सम्प्रदाय है, सभी सत्य को लेकर चले है, कोई भी सत्य को छोडकर नहीं चला। जैन धर्म ने तो 'त सच्च खु भयवं' कह कर सत्य को वास्तव मे भगवान् बताया है। वेदो मे तो 'सत्यमेव जयते नानृतम्' 'सा मा सत्योक्ति परिपातु विश्वत' (सत्य सम्पूर्णत मेरी रक्षा करे) कहा है। बौद्धधर्म ने 'यम्हि सच्च च धम्मो च सो सुची' (जिसमे धर्म और सत्य है, वह पवित्र है) कहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने तो सत्य को अपना आराध्य देव माना था। उन्होने तो यहाँ तक कहा था कि 'अगर एक भी व्यक्ति पूर्ण सत्यवादी हो तो भारत आज ही स्वतन्त्र हो जाय, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है।"

भीष्म पितामह ने अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रह कर अपने वचन को सत्यता पूर्वक निभाया। यह सत्य का ज्वलन्त उदाहरण है—

एक नाविक अपनी झोंपडी मे बैठा हुआ है। बाहर से आवाज आती है—'एक अतिथि तुम्हारे द्वार पर खडा है।" झोंपडी के छिद्र से ज्यो ही वह देखता है; कौरव कुल का राजकुमार खड़ा है, एक दम उठ खडा होता है। सोचता है—"मेरे अहो

भाग्य हैं राजकुमार मेरे द्वार पर आए हैं !" 'क्या गरीब परवर ! आज मुझ गरीब की कुटिया पर किस हेतु से पधारना हुआ !" सुदास ने कहा । राजकुमार बोले—'सुदास, आज मैं एक आशा लेकर तुम्हारे द्वार पर आया हूं । मैं एक भिक्षुक बन कर तुम से कुछ याचना करने आया हूं।' सुदास ने कहा—'सोने के सिंहासन के मालिक, भरत कुल के राजकुमार ! आपके बल और विभूति के सामने बड़े-बड़े राजा महाराजाओं की विभूति भी कुछ नहीं है । इतने बड़े वैभव के धनी होते हुए भी आप मुझ से क्या लेने आए हैं स्वामिन !

'सुदास ! क्या बताऊँ ! जब से सत्यवती को पिताजी (शान्तनु राजा) ने देखी है तब से वे उससे विवाह करना चाहते हैं। किन्तु पिताजी को शंका है कि उसकी सन्तान राजकुमार नहीं होगी, शायद यह शंका उन्हें तुम से ही पैदा हुई हो । मैं आज से यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं राज्य का अधिकारी नहीं बनूंगा। मेरी बात पर तुम यकीन करो विश्वास करो, सुदास !"

भला सोचिये तो सही, आज का मानव अपनी कही बात को कितनी जल्दी बदल देता है । शब्दों को बदलता नहीं है तो उनके आशयों को तोड़ मरोड़ कर देता है । कहाँ आज के कृतघ्न पुत्र जो अपने स्वार्थ के लिए पिता को भी छोड़ बैठते हैं पिता के सुख के लिए स्वार्थ त्याग करना तो दूर ! और कहाँ गांगेय कुमार जैसे नरवीर जो पिता के लिए अपने आने वाले राज्य का भी त्याग कर देते हैं ।

'ऐ राजकुमार ! जरा सुनो, क्या मैं अपनी सन्तान का भावी सुख न देखूं ? मैं इसमें क्या अनुचित कर रहा हूं ? तुम्हीं बताओ न ? तुमने जो कहा कि राज्य का अधिकारी

एक ओर भाई का जीवन था, भारत का साम्राज्य था, उन सब को दाव पर रखकर युधिष्ठर ने सत्य सलाह दी। दुर्योधन के मन की कलियाँ खिल गई। सोचा—"वाह! अब तो भारत का सरताज मेरे सिर पर है, पाण्डवो का सत्यानाश कर दूंगा।" पर 'जाको राखे साइयां, मार सके नहि कोय।' सयोगवश रास्ते मे श्रीकृष्ण मिल गये। उन्होने पूछा- "दुर्योधन आज तो बडे प्रसन्न हो रहे हो, क्या मिल गया ?" दुर्योधन ने मूछें तानते हुए कहा—"कृष्ण तुमने अब तक मुझे जाल मे फसाया है, अब तुम अपनी जाल मे नही फसा सकोगे। आज मै ऐसे स्थान पर जा रहा हूँ, जहाँ तुम्हारा दाव न लगेगा। धर्मराज ने सलाह बतलाई है।" श्रीकृष्ण चतुर थे। उन्होने सोचा—'एक तो शेर, फिर उसके पाखे आ जाय तो प्रलय ही कर देगा।' श्री कृष्ण बोल उठे—"अरे मूर्ख, माता के सामने एक दम नगे होकर मत जाना। कहीं वह आँखे बन्द कर देगी तो फिर कुछ नही होने का।" दुर्योधन की बुद्धि चकराई। कहावत है—"विनाश काले विपरीत बुद्धि" जिस समय आपत्ति आने वाली होती है, उस समय पहले बुद्धि बिगडती है, फिर दूसरी बाते। अत दुर्योधन ने श्री कृष्ण से कहा—"बहुत ठीक कहते हो।" श्री कृष्ण ने कहा—"ले, यह कमल के फूल की माला ले जा, इसे पहन कर माता के सामने जाना।" दुर्योधन माता गाँधारी के सामने गया और विनय-पूर्वक सारी बाते कहीं एव दृष्टिपात करने का कहा। माता गाँधारी ने कहा—"मुझे तो कुछ पता नही है कि मेरी दृष्टि मे क्या करामात है। तू कहता है तो दृष्टि फिरा देती हूँ।" यो कह कर गाँधारी ने दुर्योधन के सारे शरीर पर दृष्टि [illegible]। केवल गुप्ताग स्थान माला से आच्छादित होने के

कारण उस छोड कर बाकी सारा शरीर वज्र का सा बन गया । गाधारी बोल उठी—

'देख वह नटवर तुझे, फूलो की माला देगया ।
जिन्दगी के फूल तेरे, आज चुन कर लेगया ।।
मेरा क्या है दोष इसमे, मैं तो सच्ची रह गई ।
पर जिस जगह पर्दा किया वह जगह कच्ची रह गई ।।'

यह है सत्य का जीवन मे ज्वलन्त आचरण ! जीवन मे जब सत्य आता है तो मानव बाह्य स्वार्थो, तुच्छ आसक्ति और प्रलोभनो तथा भयो को ठुकरा देता है, सत्य के पीछे सवस्व न्योछावर करने को तयार हो जाता है । वह राजपाट, धन, धाम आदि वैभवमय दुनिया को भी लात मार देता है। भारतीय इतिहास मे ऐसे सकडो उदाहरण आपको मिलेंगे। सकडो यज्ञो की मिलने वाली यश कीर्ति का सत्य का दीवाना क्षण भर मे त्याग देता है । इसीलिए महर्षि व्यास ने एक श्लोक मे सत्य की महिमा को अपनी शान्तवाणी मे प्रकट किया है —

'अश्वमेध सहस्राणि सत्य च तुलया धतम्
अश्वमेध महस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ।'

तराजू के एक पलडे मे सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल रखा जाय और दूसरे पलडे म अकेले सत्य को तो भी सहस्रो अश्वमेध यज्ञो से सत्य वजनदार होगा, बढ कर होगा ।

इसीलिए सत्य के द्रष्टाओ ने, ऋषि मुनियो ने तीर्थकरो ने सत्य की खोज के लिए जगलो-जगलो की खाक छानी, सत्य की प्राप्ति के लिए नगे रह भूखे रहे नाना कष्ट सहे और अन्त मे जो सत्य मिला उस पर दृढ रहे ।

हाँ, यह हो सकता है कि एक को जो सत्य और परिपूर्ण सत्य दिखता हो, दूसरे की दृष्टि मे उसके सिवाय अन्य कोई सत्य नजर आता हो, परन्तु देश, काल, और पात्र के भेद से सत्य मे भेद होने पर भी उस सत्य को असत्य नहीं कहा जा सकता। पूर्ण सत्य की उपलब्धि तो महा कठिन है ही। अनेकान्तवाद के द्वारा विभिन्न पहलुओ को, सत्य के अशो को जहाँ से जितना ग्रहण किया जासके, उतना – उतना सत्यग्राही पुरुष ग्रहण करता है। वह अमुक धर्मग्रन्थो, अमुक पोथियो या अमुक सम्प्रदायो मे ही सत्य को परिसमाप्त नहीं कर देता। विभिन्न देश, काल और परिस्थितियो मे खोजे हुए विभिन्न सत्यो को वह हृदयगम करता रहता है और सत्य की उपलब्धि द्वारा अपनी आत्मा को समृद्ध बनाता रहता है। ज्यो-ज्यो जिस पुरुष को सत्य की अधिकाधिक उपलब्धि होती जाती है, त्यो-त्यो वह रागद्वेष से दूर-दूर होता जाता है, उस सत्य को जीवन मे आचरण करने, जनसमाज मे उसका प्रचार करने और विचार प्रचार द्वारा जनसमुदाय को सत्य के अधिक निकट ले जाने का प्रयत्न करता रहता है। यही सत्य की उपासना का सही तरीका है; जिसके द्वारा जीवन अमरता की ओर बढता जाता है।

आप भी सत्य की पगडडी पर चलें तो आपका जीवन अमृतमय बन जाय। शान्तिमय बन जाय, और आनन्दमय बन जाय। भारतीय सस्कृति तो इसी सत्य की उपासना द्वारा विश्व को शान्ति का सन्देश देती आ रही है।

आशा है, आप सत्यामृत का पान करके जीवन को सच्चिदानन्दमय बनाएँगे।